वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656
9 772582 065005

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६३ अंक ९ सितम्बर २०२५

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६ ३

अंक ९

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

भाद्र, सम्वत् २०८२

सितम्बर, २०२५

अनुक्रमणिका

* सतीत्व आधुनिक हिन्दू नारी के जीवन की केन्द्रीय भावना है : विवेकानन्द ३९०
* श्रीराम की शारदीय दुर्गा-पूजा (स्वामी अलोकानन्द) ३९३
* वेदों में दुर्गा-पूजा (उत्कर्ष चौबे) ४००
* (बच्चों का आंगन) दुर्घटना भी नहीं तोड़ पायी गोल्डी का साहस (श्रीमती मिताली सिंह) ४०५
* आध्यात्मिक साधना शिविर क्यों? (स्वामी सत्यरूपानन्द) ४०६
* (युवा प्रांगण) अनकहे किन्तु मूल्यवान प्रसंग (स्वामी गुणदानन्द) ४०८
* शरत्काल में अनन्तरूपों में दुर्गा-पूजा (स्वामी ईशानन्द) ४१०
* पाञ्चरात्र शास्त्रों में दुर्गा (डॉ. अरूपम सान्याल) ४१५
* शक्ति (स्वामी सत्कृतानन्द) ४१९
* नवदुर्गा (स्वामी मैथिलीशरण) ४२४
* तमिलनाडु का कन्याकुमारी शक्तिपीठ (श्री सुदर्शन अवस्थी) ४२५
* (भजन एवं कविता) माँ, दुख भी तो वरदान तुम्हारा (आनन्द तिवारी) ४०४
* माँ श्यामा मैं तुम्हें पुकारूँ (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) * हे प्रेममयी राधे! (अनिल तिवारी) धारण कर नव अवतार शिवे! (डॉ. अनिल कुमार, फतेहपुरी) ४०७
* श्रीरामकृष्ण-स्तुति-५ (रामकुमार गौड़) ४१७
* जय जय भवानी ब्रह्माणी (डॉ. राजनाथ त्रिपाठी) ४२०
* शोक हरी सुर दी वर दुर्गा (श्रीधर द्विवेदी) ४२६

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ३८९
पुरखों की थाती ३८९
सम्पादकीय ३९१
रामगीता ३९७
श्रीरामकृष्ण-गीता ४१४
प्रश्नोपनिषद् ४१८
गीतातत्त्व-चिन्तन ४२१
साधुओं के पावन प्रसंग ४२७
समाचार और सूचनाएँ ४३०

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	६०यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	

भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दर्शाया गया चित्र देवी दूर्गा का है। इसमें उनके पितृगृह आगमन तथा हिमवान भार्या मैना रानी के पुत्रीप्रेम को दर्शाया गया है।

सितम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

१५	**स्वामी अभेदानन्द**
२१	**स्वामी अखण्डानन्द**
३०	**दुर्गाष्टमी**
३,१७	**एकादशी**

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	६,६०१/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७२९. डॉ. अमरलाल पालीवाल,मिसरोद, भोपाल, म.प्र.	गायत्री शक्तिपीठ, भोपाल पुस्तकालय,एम.पी.नगर,भोपाल,म.प्र.

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६३ सितम्बर २०२५ अंक ९

श्रीदुर्गा-स्तुतिः

नमो देवि दुर्गे शिवे भीमनादे
सरस्वत्यरुन्धत्यमोघस्वरूपे ।
विभूतिः शची कालरात्रिः सती त्वं
नमस्ते जगत्तारिणी त्राहि दुर्गे ।।

– हे देवि ! हे दुर्गे ! हे शिवे ! हे भीमनादिनी ! आप वाक्शक्ति (ज्ञान) हो, कुण्डलिनी शक्ति हो तथा अमोघफलस्वरूपिणी हो, आपको नमस्कार है ! आप ऐश्वर्य हो, आप सहायरूपिणी हो, आप महाप्रलय(-अन्धकार) रूपिणी हो, आप सत्यस्वरूपा हो; हे जगत्तारिणी ! आपको नमस्कार है ! हे दुर्गे ! आप रक्षा करो।

पुरखों की थाती

यत्नानुसारिणी विद्या लक्ष्मीः पुण्यानुसारिणी।
दानानुसारिणी कीर्तिर्बुद्धिः कर्मानुसारिणी।।८७८।।

– प्रयत्न के अनुपात में विद्या मिलती है, पुण्य के अनुसार धन-सम्पदा मिलती है, दान के अनुसार यश-कीर्ति मिलती है और कर्म के अनुसार बुद्धि मिलती है।

न सा दीक्षा न सा भिक्षा न तद्दानं न तत्तपः।
न तद्ध्यानं न तन्मौनं दया यत्र न विद्यते।।८७९।।

– जिस व्यक्ति में दया या करुणा न हो, उसका दीक्षा लेना, भिक्षा देना, दान देना, तप करना, ध्यान लगाना और मौन धारण करना – सब कुछ निरर्थक है। अर्थात् दया ही धर्म का मूल है।

स्त्रीणां श्रीणां च ये वश्यास्तेऽवश्यं पुरुषाधमाः।
स्त्रियः श्रियश्च यद्वश्यास्तेऽवश्यं पुरुषोत्तमाः।।८८०।।

– जो लोग कामिनी-कांचन के वशीभूत होते हैं, वे निकृष्ट कोटि के मनुष्य हैं और जो इनसे वशीभूत नहीं होते, वे उत्तम पुरुष कहलाते हैं।

सतीत्व आधुनिक हिन्दू नारी के जीवन की केन्द्रीय भावना है : विवेकानन्द

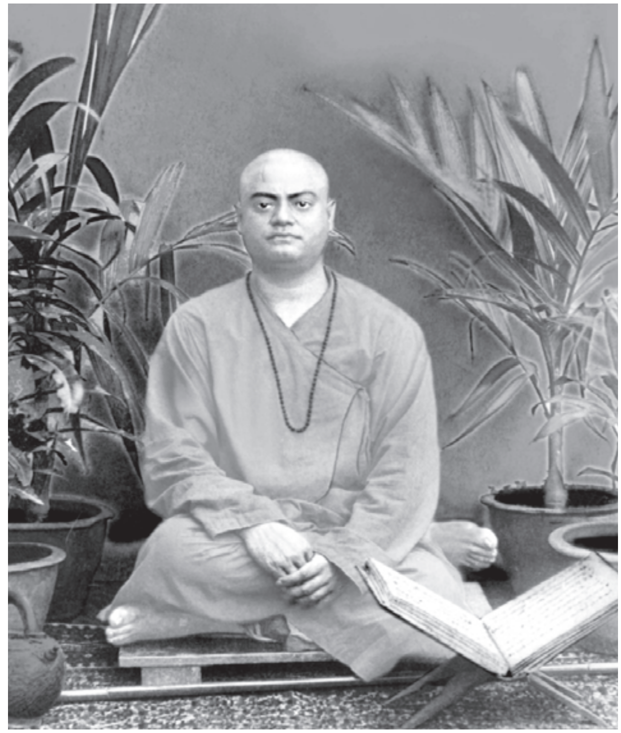

किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है, वहाँ की महिलाओं के साथ होनेवाला व्यवहार। प्राचीन यूनान में पुरुष और स्त्री की स्थिति में कोई भी अन्तर नहीं था, समानता का विचार प्रचलित था। कोई हिन्दू बिना विवाह किये पुरोहित नहीं हो सकता। आशय यह है कि अविवाहित, एकाकी मनुष्य केवल आधा और अपूर्ण होता है। आदर्श स्त्रीत्व का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता है। सतीत्व आधुनिक हिन्दू नारी के जीवन की केन्द्रीय भावना है। पत्नी एक वृत्त का केन्द्र है, जिसका स्थायित्व उसके सतीत्व पर निर्भर है। इसी आदर्श की अति के कारण हिन्दू विधवाएँ जलायी गयीं। हिन्दू स्त्रियाँ बहुत ही आध्यात्मिक और धार्मिक होती हैं। कदाचित संसार की सभी महिलाओं से अधिक। यदि हम उनकी इन सुन्दर विशिष्टताओं की रक्षा कर सकें और साथ ही उनका बौद्धिक विकास भी कर सकें, तो भविष्य की हिन्दू नारी संसार की आदर्श नारी होगी। (१/३२४-२५)

महान आर्यों ने तथा शेष में बुद्ध ने स्त्री को सदैव पुरुष के बराबर स्थान में रखा है। उनके लिए धर्म में लिंगभेद का अस्तित्व न था। वेदों और उपनिषदों में स्त्रियों ने सर्वोच्च सत्यों की शिक्षा दी है और उनको वही श्रद्धा प्राप्त हुई है, जैसी कि पुरुषों को। (६/२७६)

बुद्ध ने धर्म में पुरुषों के समान ही स्त्रियों का भी अधिकार स्वीकार किया था और उनकी अपनी स्त्री ही उनकी प्रथम और प्रधान शिष्या थीं। वे बौद्ध भिक्षुणियों की अधिनायिका हुई थीं। (७/९२)

तो स्वामीजी, क्या हमारी नारियों की कोई समस्या है भी?

निश्चय ही है, उनकी समस्याएँ बहुत-सी हैं और गम्भीर हैं, पर उनमें एक भी ऐसी नहीं है, जो जादू भरे शब्द 'शिक्षा' से हल न की जा सकती हो। पर वास्तविक शिक्षा की तो अभी हम लोगों में कल्पना भी नहीं की गयी है।

आप उसकी परिभाषा कैसे करेंगे?

मैं कभी किसी बात की परिभाषा नहीं करता, स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा, फिर भी हम इसे मानसिक शक्तियों का विकास – केवल शब्दों का रटना मात्र नहीं, अथवा व्यक्तियों को ठीक तरह से और दक्षतापूर्वक इच्छा करने का प्रशिक्षण देना कह सकते हैं। इस प्रकार हम भारत की आवश्यकता के लिये महान निर्भीक नारियाँ तैयार करेंगे – नारियाँ जो संघमित्रा, लीला, अहल्याबाई और मीराबाई की परम्पराओं को चालू रख सकें – नारियाँ जो वीरों की माताएँ होने के योग्य हों, क्योंकि वे पवित्र और आत्मत्यागी हैं और उस शक्ति से शक्तिशाली है, जो भगवान के चरण छूने से आती है।

प्रत्येक पुरुष के लिए अपनी पत्नी को छोड़ अन्य सब स्त्रियाँ माता के समान होनी चाहिए। जब मैं अपने आसपास देखता हूँ और स्त्री-दाक्षिण्य के नाम पर जो कुछ चलता है, वह देखता हूँ, तो मेरी आत्मा ग्लानि से भर उठती है। जब तक तुम्हारी स्त्रियाँ काम सम्बन्धी प्रश्न की उपेक्षा करके सामान्य मानवता के स्तर पर नहीं मिलतीं, उनका सच्चा विकास नहीं होगा। तब तक वे केवल खिलौना बनी रहेंगी, और कुछ नहीं। यह सब तलाक का कारण है। तुम्हारे पुरुष नीचे झुकते हैं और कुर्सी देते हैं, मगर दूसरे ही क्षण वे प्रशंसा में कहना आरम्भ करते हैं – 'देवी जी, तुम्हारी आँखें कितनी सुन्दर हैं!' उन्हें यह करने का क्या अधिकार है? एक पुरुष इतना साहस क्यों कर पाता है और तुम स्त्रियाँ कैसे इसकी अनुमति दे सकती हो? ऐसी चीजों से मानवता के अधमतर पक्ष का विकास होता है। उनसे श्रेष्ठ आदर्शों की ओर हम नहीं बढ़ते।

सम्पादकीय

धर्म-सभा के मंच पर जब पहुँचे वीर–नरेन्द्र

धर्मभूमि और पुण्यभूमि भारत की अस्मिता जब विश्व के मंच पर धूमिल हो रही थी, जब वर्षों की परतन्त्रता ने भारतवासियों के आत्मगौरव और स्वाभिमान को नष्टप्राय कर दिया था, जब तथाकथित तत्कालीन भारतीय शिक्षित लोग भी अँग्रेजों की श्लाघा और उनके धर्म में ही अपनी अस्मिता का भान करने लगे थे, जब इन विषम परिस्थितियों ने भारत-माता को निराश और हताश-सा कर दिया था, तब वीरप्रसविनी भारताम्बा ने एक वीर-पुत्र को शिकागो के धर्मसभा में भेजकर उन लोगों की भारत के प्रति भ्रान्ति और उनका अहंकार तोड़कर उन्हें सन्मार्ग प्रदर्शित किया।

जब किसी धर्म-विशेष के अनुयायियों को यह भ्रान्ति हुई कि विश्व में हमारा ही धर्म सर्वश्रेष्ठ है, अन्य धर्म गौण या न्यून हैं और अपनी इस भ्रान्तिपरक सर्वश्रेष्ठता को विश्वमंच पर सिद्ध करने का प्रयत्न शिकागो के धर्मसभा के रूप में वैश्विक स्तर पर करने का उद्यम हुआ, तो भारत-माता ने अपनी महिमा व्यक्त करने एवं जगत को यह अभिनव संदेश देने के लिये अपने वीर-पुत्र नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) को शिकागो में भेजा। विश्व के इतिहास में यह एक विलक्षण घटना थी कि जिसे आमन्त्रित नहीं किया गया, वह उस विशाल सभा में प्रतिभागी बना और उस सभा का सिरमौर बन गया।

इस सन्दर्भ में मुझे एक घटना याद आती है। जब जनकपुर में धनुष-यज्ञ हो रहा था, तब श्रीराम-लक्ष्मण भी बिना निमन्त्रण के ही गुरुजी के साथ गये थे और श्रीराम धनुष-भंग कर सभा-शिरोमणि हो गये थे। श्रीराम के धनुष-भंग से उत्पन्न परिस्थिति का दृश्य गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में इस प्रकार वर्णन किया है –

उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल-पतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग।।
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी।
बचत नखत अवली न प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने।
कपटी भूप उलूक लुकाने।।
भये बिसोक कोक मुनि देवा।
बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा।। १/२५४/१-३

– मंच रूपी उदयाचल पर श्रीराम रूपी बाल सूर्य के उदय होते ही सब सन्त रूपी कमल खिल उठे और नेत्र रूपी भौंरे हर्षित हो गये। राजाओं की आशा-रात्रि नष्ट हो गयी। उनके वचन-नक्षत्रों का चमकना बन्द हो गया अर्थात् वे मौन हो गये। अभिमानी राजा रूपी कुमुद मुरझा गये और कपटी राजा रूपी उल्लू छिप गये।

शिकागो के धर्म-सम्मेलन में भी लगभग यही घटना घटी। जब स्वामीजी शिकागो-धर्म महासभा के मंच पर खड़े हुये और मात्र 'अमेरिकावासी बहनो और भाइयो' ही कहा कि श्रोताओं ने एक अद्‌भुत आकर्षण का, अपनत्व का बोध किया और सभाकक्ष तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। स्वामीजी के उस दिन के अल्पकालिक व्याख्यान ने समस्त कट्टरपन्थियों की धज्जियाँ उड़ा दी। जब भारत-माता का सपूत नर-केसरी मंच पर दहाड़ने लगा, तो अपने-अपने संकुचित विचारों के कुंडवासी निराश हो गये, उदास हो गये, उनका विश्वमंच पर अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ घोषित करने का स्वप्न टूट गया और जितने उदार, सज्जन दर्शक-वृन्द थे, वे सभी प्रसन्न हुये। भारत-माता अपने योग्य सपूत पर गर्वान्वित हुई। इस सिंहपुरुष युगनायक स्वामी विवेकानन्द जी के लिये ये पंक्तियाँ अत्यन्त सटीक प्रतीत होती हैं –

धर्मसभा के मंच पर जब पहुँचे वीर नरेन्द्र।
गूँज ऊँठी करतल-ध्वनि मुदित दर्शकवृन्द।।

ध्वस्त हुये कट्टरवादी, जब प्रगटे सूर्य-नरेन्द्र।
जैसे भागत पशु-निकर आवत देखि मृगेन्द्र।।

क्या गर्जना की स्वामीजी ने? सप्तर्षिमण्डलागत ऋषि स्वामी विवेकानन्द ने धर्मसभा में सर्वप्रथम भारतीय संस्कृति और हिन्दू-धर्मशास्त्र में निहित उस महिमान्वित श्लोक का गायन किया, जो सर्वधर्मों की समानता, यथार्थता और आवश्यकता को द्योतित करता है –

रुचीनां वैचित्र्यादृजु-कुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

– 'जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।'

यह सभा, जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है, स्वतः ही गीता के इस अद्भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत के प्रति उसकी घोषणा है–

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

– 'जो कोई मेरी ओर जाता है, चाहे किसी प्रकार से हो, मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी ही ओर आते हैं।'

भारत और हिन्दू धर्म के विरुद्ध अनर्गल बातें प्रसारित करनेवालों को स्वामीजी ने सर्वप्रथम सनातन हिन्दू धर्म की महिमा से अवगत कराने के बाद उनकी कूपमंडूकता और कट्टरता पर कठोर प्रहार करते हुये सिंह-सदृश दहाड़ते, ललकारते हुये कहा – ''साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी बीभत्स वंशधर धर्मान्धिता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये बीभत्स दानवी न होतीं, तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है और मैं आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घण्टा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होनेवाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होनेवाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।''

स्वामीजी ने धर्मान्धों की कट्टरता पर कड़ा प्रहार करते हुये हुंकारा – ''धार्मिक एकता की सर्वसामान्य भित्ति के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। ... किन्तु यदि यहाँ कोई यह आशा कर रहा है कि यह एकता किसी एक धर्म की विजय और बाकी सब धर्मों के विनाश से सिद्ध होगी, तो उनसे मेरा कहना है कि 'भाई, तुम्हारी यह आशा असम्भव है।' क्या मैं यह चाहता हूँ कि ईसाई लोग हिन्दू हो जायँ। कदापि नहीं, ईश्वर ऐसा न करे! क्या मेरी यह इच्छा है कि हिन्दू या बौद्ध लोग ईसाई हो जायँ? ईश्वर इस इच्छा से बचाये !

बीज भूमि में बो दिया गया और मिट्टी, वायु तथा जल उसके चारों ओर रख दिये गये। तो क्या वह बीज मिट्टी हो जाता है अथवा वायु या जल बन जाता है? नहीं, वह तो वृक्ष ही होता है, वह अपनी वृद्धि के नियम से ही बढ़ता है – वायु, जल और मिट्टी को अपने में पचाकर, उनको उद्भिज पदार्थ में परिवर्तित करके एक वृक्ष हो जाता है।

ऐसा ही धर्म के सम्बन्ध में भी है। ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हाँ, प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों के सार-भाग को आत्मसात् करके पुष्टि-लाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपने निजी वृद्धि के नियम के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।

धर्मसभा के अन्तिम दिन इस नरेन्द्र-केशरी ने सभा मंच पर गर्जन किया – ''इस धर्म-महासभा ने जगत के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है – उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय-विशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाये देता हूँ कि शीघ्र ही, सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा – 'सहायता करो, लड़ो मत।' 'पर-भाव-ग्रहण, पर-भाव-विनाश नहीं'; 'समन्वय और शान्ति, मतभेद और कलह नहीं !'' तो यह थी नर-केशरी विवेकानन्द की दहाड़ ! ○○○

दुर्गा-पूजा विशेष

श्रीराम की शारदीय दुर्गा-पूजा

स्वामी अलोकानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

भारतवर्ष के बंगदेश, मिथिला, कामरूप और उत्कल प्रदेश में प्रतिमा में श्रीदुर्गा-पूजा सदियों से चली आ रही है। यह पूजा वर्ष में दो बार आश्विन और चैत्र मास में शुक्ल सप्तमी से शुक्ल नवमी तक की जाती है। आश्विन माह में होनेवाली इस पूजा को 'शारदीय दुर्गा-पूजा' कहा जाता है तथा चैत्र की पूजा को 'वासन्ती दुर्गा-पूजा' के नाम से जाना जाता है। भारत के अन्य प्रदेशों में इस समय देवी माहात्म्य या श्रीदुर्गासप्तशती चंडी का पारायण करके नवरात्रि उत्सव मनाया जाता है। श्रीरामचन्द्र द्वारा रावण-वध कर लंका विजय के उपलक्ष्य में शारदीय नवरात्र उत्सव के अन्तिम दिन, दशमी तिथि को विजयोत्सव दशहरा विजया दशमी के रूप में सर्वत्र ही मनाया जाता है।

शारदीय दुर्गा-पूजा में 'बोधन' नामक अंग-पूजा की जाती है। 'बोधन' शब्द का अर्थ है 'जागृति'। शारदीय दुर्गा-पूजा षष्ठी की सन्ध्या 'बिल्ववृक्षमूले पातिया बोधन' से आरम्भ होती है। वासन्ती दुर्गा-पूजा में बोधन कर्म नहीं होता है। वस्तुत: श्रावण से पौष माह तक दक्षिणायन काल देवताओं की रात्रि और माघ से आषाढ़ माह तक उत्तरायण काल देवताओं का दिन होता है। इसलिए वासन्ती दुर्गा-पूजा में दैवदिन के समय होने के कारण अर्थात् जागने के समय पुन: जागृति की आवश्यकता नहीं होती। इसलिये शारदीय दुर्गा-पूजा को 'अकाल बोधन' के नाम से भी जाना जाता है। चूँकि वासन्ती दुर्गा-पूजा देवताओं के जागरण के दौरान होती है, इसलिये बोधन अनावश्यक है। यह पूजा महाराज सुरथ ने की थी। ब्रह्मवैवर्त पुराण में, नारायण ने महाराज सुरथ को मोक्ष के लिये देवी की इस पूजा को करने का निर्देश देकर वासन्ती पूजा की महिमा के बारे में बताया है –

पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना।
सम्पूज्य मधुमासे च सम्प्रीते रासमण्डले।।[१]

अर्थात् उन देवी को पहली बार वसन्त ऋतु में गोलोक

स्थित रासमण्डलान्तर्गत सर्वोच्च भगवान कृष्ण द्वारा एक स्तुति द्वारा पूजा गया था। फिर मधु-कैटभ से युद्ध के समय दूसरी बार भगवान विष्णु ने और तीसरी बार प्राणसंकट के प्रकट होने पर ब्रह्मा ने पूजन किया था।

इन श्लोकों को उद्धृत करते हुए वाचस्पति मिश्र अपने 'कृत्यचिन्तामणि' के वासन्ती पूजा-प्रकरण में कहते हैं –

पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।

मधुमाससिताष्टम्यां नवम्यां विधिपूर्वकम्।।[२]

इस सम्बन्ध में भविष्योत्तरपुराण में भी कहा गया है –

चैत्रे मासि सिते पक्षेसप्तम्यादि दिनत्रये।

पूजयेद् विधिवद् दुर्गां दशम्यान्तु विसर्जयेत् ।।[३]

शरद ऋतु में देवी पूजा के सम्बन्ध में कालिका पुराण में कहा गया है कि देवताओं द्वारा महिषासुर-वध के लिये अनुनय किये जाने पर देवी कात्यायन मुनि के आश्रम में दशभुजा दुर्गा के रूप में प्रकट हुईं।

देव्याविर्भाव और उनके कार्यों का वर्णन श्रीदुर्गासप्तशती या श्रीश्रीचण्डी में वर्णित महिषासुरवध के लिये राजसी शक्ति महालक्ष्मी के रूप में देवी के आविर्भाव की कहानी वर्णित है। ऐसा कालिका पुराण में कहा गया है –

यदा स्तुता महादेवी बोधिता चाश्विनस्य च।

चतुर्दशी कृष्णपक्षे प्रादुर्भूता जगन्मयी।।

देवानां तेजसां मूर्तिः शुक्लपक्षे सुशोभने।

सप्तम्यां साकरोद् देवी अष्टम्यां तैरलङ्कृता।।

नवम्यामुपहारैस्तु पूजिता महिषासुरम्।

निजघान दशम्यान्तु विसृष्टान्तर्हिता शिवा।।[४]

देवी पुराण में यह भी कहा गया है कि देवी ने शरद ऋतु में आश्विन की महानवमी को घोरासुर का वध किया था। देवी भागवत में सती के देह-त्याग के बाद आश्विन शुक्लाष्टमी को भद्रकाली के रूप में प्रकट हुई देवी को दक्ष-यज्ञ का विध्वंस करने वाला बताया गया है। इसीलिये उनका एक नाम 'दक्षयज्ञविनाशिनी' भी है। पूजा-मन्त्र में 'दक्षयज्ञ-विनाशिन्यै महाघोरायै' आदि भी कहा गया है। त्रेता युग में श्रीरामचन्द्र ने रावण-निधनार्थ देवताओं की रात्रि के समय देवी की पूजा की थी। ब्रह्मा ने उस समय देवी का बोधन किया था। कालिकापुराण में यही कहा गया है –

रामस्यानुग्रहार्थाय रावणस्य वधाय च।

रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा।।[५]

बृहन्नंदिकेश्वर पुराणोक्त पूजाविधि में बोधन-मन्त्र में भी सम्मिलित किया गया है –

ॐ ऐं रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च।

अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यस्त्वयि कृतपुरा।।[६]

वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, तुलसीदासकृत रामचरितमानस आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों में श्रीरामचन्द्र की दुर्गा-पूजा का कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु बाँग्लाभाषा की सुप्रसिद्ध कृत्तिवासी रामायण में इस पूजा का वर्णन अत्यन्त भक्तिपूर्ण एवं मधुर छन्द में लिपिबद्ध है। अन्य प्रान्तों में शारदीय नवरात्र उत्सव के अन्त में दशहरा या रावण-दहन कर विजयोत्सव भी उनकी दुर्गा-पूजा को ही स्मरण कराता है। अब देखते हैं कि शास्त्र इस बारे में क्या कहते हैं। देवी भागवत में श्रीरामचन्द्र को देवर्षि नारद ने किष्किन्ध्या में रहते हुए देवी की पूजा के बारे में परामर्श दिया था। वहाँ इस व्रत को करने से उन्हें कृपा प्राप्त हुई और उन्होंने रावण को मारकर सीता को बचाया। नारद ने रामचन्द्र को व्रत के नियमों के बारे में बताया है –

उपायं कथयाम्यद्य तस्य नाशाय राघव।

व्रतं कुरुष्व श्रद्धावानाश्विने मासि साम्प्रतम्।।

नवरात्रोपवासञ्च भगवत्याः प्रपूजनम्।

सर्वसिद्धिकरं राम जपहोमविधानतः।।

मेध्यैश्च पशुभिर्देव्या बलिं दत्त्वा विशंसितैः।

दशांशं हवनं कृत्वा सुशक्तत्वं भविष्यसि।।

कालिका पुराण में मिलता है, ब्रह्मा ने राम को अनुग्रह करने और रावण के वध हेतु लंका में आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी और दशमी तक देवी-पूजा की थी। नवमी को रावण का वध हुआ और दशमी को विजयोत्सव सम्पन्न हुआ। इस पुराण में हमें कुछ विशेष जानकारी मिलती है। जैसे राम-रावण युद्ध कई सप्ताह तक चला। अन्ततः देवी की कृपा से श्रीराम ने नवमी के दिन रावण का वध कर दिया –

व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्यां रावणं ततः।

रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी।।

देवी के बोधन के विषय में कालिका पुराण में अन्यत्र कहा गया है –

शरत्काले पुरा यस्मात् नवम्यां बोधिता सुरैः।

शारदा सा समाख्याता पीठे लोके च मानवः।।[९]

महाभागवतपुराण (अध्याय ३४-४८) में इस पूजा का स्पष्ट वर्णन मिलता है। शारदीय कृष्ण नवमी को लंका में समुद्र-तट पर श्रीरामचन्द्र द्वारा ब्रह्माजी के सान्निध्य में पूजा की गई। उस दिन से शुक्ल षष्ठी तक देवी की सामान्य पूजा की जाती है। छठे दिन की शाम को बिल्व वृक्ष के मूल में निवास का निमन्त्रण, सातवें दिन नवरात्रि का प्रवेश कर नौवें दिन तक मृण्मयी प्रतिमा में माँ देवी की विशेष पूजा की जाती है। अष्टमी-नवमी के सन्धि-क्षण को सन्धि-पूजा और दशमी को विसर्जन किया जाता है। नवमी को रावण-वध व दशमी को विजयोत्सव मनाया जाता है। यहाँ हमें नवम्यादि कल्पारम्भ में प्रथम कल्प की पूजा का आभास मिलता है। आजकल यह विशेष पूजा कहीं-कहीं देखी जा सकती है।

ऐसी ही एक कथा बृहद्धर्म पुराण के पूर्वी भाग में महाभागवत के अनुरूप ही मिलती है। इस पुराण में विशेषकर ब्रह्मा द्वारा देवी के असामयिक बोधन का विस्तृत वर्णन है। जिस दिन कुम्भकर्ण को लंका में जगाया गया, देवताओं ने भगवान राम के मंगलार्थ ब्रह्मा से स्वस्ति-वाचनादि करने की इच्छा व्यक्त की। उस समय कृष्णपक्ष की अल्प अवधि शेष थी। ब्रह्मा जानते थे कि यदि रावण शुक्लपक्ष में देवी की पूजा करेगा, तो वह अजेय हो जाएगा। अत: वह तुरन्त ही देवताओं के साथ देवी की स्तुति करने लगे। बाद में एक कन्या वहाँ प्रकट हुई और उसने देवी का निर्देश सुनाते हुए कहा कि आप लोग कल बिल्व वृक्ष पर देवी का बोधन कर पूजन करें। आपकी स्तुति से वह इस असामयिक, अकाल बोधिता हो आपकी पूजा ग्रहण करेंगी। धर्मपरायण श्रीराम भी सफल होंगे।[१०] ब्रह्माजी तब देवताओं के साथ मर्त्यलोक पर आये। यहीं उन्होंने एक विल्ववृक्ष के मूल में पत्र-राशियों के मध्य में तप्तकांचनवर्णा सद्य:प्रसूता अपूर्व सुन्दरी एक बालिका को निद्रामग्न देखा। वे लक्षणादि देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने देवताओं के साथ **'जाने देवीमीदृशीं त्वां महेशीं। क्रीड़ास्थाने स्वागतां भूतलेऽस्मिन्।। शत्रुस्त्वं वै मित्ररूपा च दुर्गा। दुर्गम्या त्वं योगिनामन्तरेऽपि।।**[११] इत्यादि बोधन-स्तव किया। स्तुति से संतुष्ट होकर प्रबुद्धा देवी कन्या रूप छोड़कर अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हुईं, तब ब्रह्मा ने उनसे प्रार्थना की –

ऐं रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च।
अकाले तु शिवे बोधस्तव देव्या: कृतो मया।।[१२]

देवी ने 'तथास्तु' कहा और ब्रह्मा को वांछित वरदान दिया। उन्होंने यह भी कहा कि कुम्भकर्ण का वध आज कृष्ण नवमी को होगा। त्रयोदशी को अतिकाय की मृत्यु लक्ष्मणास्त्र से होगी। अमावस्या की रात को लक्ष्मण इन्द्रजीत का वध करेंगे। चतुर्दशी को रावण युद्धयात्रा करेगा। सप्तमी को मैं श्रीराम के दिव्य शरासन में अधिष्ठान करुँगी तथा अष्टमी के दिन राम-रावण का भीषण युद्ध होगा। अष्टमी-नवमी की सन्धि में रावण का सिर कई बार कटेगा और कई बार जुड़ेगा। अन्तत: नवमी की दोपहर में रावण का वध होगा तथा दशमी को श्रीराम विजयोत्सव मनाया जाएगा।

हालाँकि पुराणों में कुछ मतभेद हैं, लेकिन दुर्गा-पूजा और श्रीरामचन्द्र के अकाल बोधन की बात मूलत: शास्त्र-सम्मत है। पश्चिम बंगाल के नदिया जिला में फुलिया के मूल निवासी कृत्तिवास ओझा द्वारा पयार छन्दों में रचित बांगला रामायण में श्रीरामचन्द्र की दुर्गा-पूजा का सुन्दर और विस्तृत वर्णन है। उनकी रचनाओं का आधार देवीभागवत, कालिकापुराण, महाभागवत जैसे पौराणिक ग्रन्थ प्रतीत होते हैं। पूजा की सामग्री, पर्यावरण, बंगाल के ग्राम्य आंगन का वर्णन करते समय कवि की मनोदशा प्रतिबिम्बित हुई है। भक्त की भक्ति ही इस कथा का स्रोत है।

श्रीरामचन्द्र रावण-वध के लिए चिन्तित हैं। उस समय देवताओं के अनुग्रह पर ब्रह्माजी श्रीराम के समक्ष प्रकट हुए और छठे कल्प में बोधन का विधान दिया – **'बिधाता कहेन सार, शुन बिधि दिइ तार, कर षष्ठी कल्पेते बोधन।'** तदनुसार श्रीरामचन्द्र ने षष्ठी को बोधन कर सप्तमी व महाष्टमी को भक्तिपूर्वक देवी की पूजा की। अष्टमी-नवमी को '**संधि क्षणे संधि पूजा कैल रघुनाथ**'। अन्त में नवमी तिथि को भव्य पूजा का आयोजन किया गया, जिसका वर्णन कृत्तिवास पंडित की रचनाओं में इस प्रकार है –

नबमीते रघुपति, पूजिबारे भगबती,
उद्योग करिल फल फूल।
बेद शास्त्रबिधि मत, आनिल सामग्री यत,
कपिगण योगाइछे फूल।।[१३]

कृत्तिवास ओझा ने मूलत: बंगाल प्रान्त में सुलभ समस्त पुष्पों जैसे अशोक, कांचन, जवा (उड़हुल), मल्लिका, मालती, पलाश, पाटली (गुलाब), अतसी, अपराजिता, काठमल्लिका, दोपाटि (गुलमेहंदी), कृष्णचूड़ा आदि विभिन्न प्रसिद्ध फूलों का उल्लेख करते हुए पूजा में उनकी व्यवस्था

की गई ऐसा लिपिबद्ध किया है। रामचन्द्र अनुज लक्ष्मण के साथ भक्तिपूर्वक देवी की पूजा करते हैं। परन्तु देवी के दर्शन न होने पर वे व्याकुल हो गये। तब विभीषण ने सुझाव दिया –

तुषिते चण्डीरे एइ करह बिधान।
अष्टोत्तर शत नीलोत्पल कर दान।।
देबेर दुर्लभ पुष्प यथा तथा नाइ।
तुष्ट हबेन भगबती शुनह गोंसाइ।।[१४]

हनुमानजी उन एक सौ आठ नील कमलों को देवीदह से ले आये। श्रीरामचन्द्र भी भक्तिभाव से एक-एक करके नीलपद्म देवी के चरणों मे समर्पित करते हैं। किन्तु एक सौ सात कमल निवेदन के बाद एक समस्या हो गई –

क्रमे पद्म सव दिलेन राघव
राम जगत् गोंसाइ।
शेषेते वियोग हैल अत्र योग
एक पद्म मिले नाइ।।[१५]

श्रीरामचन्द्र चिन्तित थे। वह देवी की अनेक स्तुतियाँ कर प्रार्थना कर रहे थे। कई शिकायतें व्यक्त करने के बाद उन्होंने निश्चय किया –

नीलकमलाक्ष मोरे बले सर्बजने।।
युगल नयन मोर फुल्ल नीलोत्पल।
सङ्कल्प करिब पूर्ण बुझिया सकल।।
एक चक्षु दिब आमि देबीर चरणे।[१६]

इस प्रकार, जब उन्होंने अपने कमलों के समान आँखों को निकालने का साहस किया, तो देवी ने प्रकट होकर उन्हें रोकते हुए कहा –

कि कर कि कर प्रभु जगत् गोंसाई।
पूर्ण होइलो चक्षु उपड़िया कार्य नाई।।[१७]

अन्ततः देवी का आशीर्वाद लेकर श्रीरामचन्द्र युद्ध क्षेत्र के लिये निकल पड़े। संग्राम में रावण मारा गया और सीता को छुड़ाया गया। कृत्तिवास के रामायण में नीलपद्म की कहानी नये सिरे से सामने आती है। अन्य पुराणों में भी श्रीरामचन्द्र की दुर्गा-पूजा का वर्णन इसी प्रकार किया गया है। शारदीय पूजा श्रीरामचन्द्र ने की थी। इसीलिये शारदीय पूजा को समय से पहले ही प्रमुखता मिलती दिख रही है। इसके अलावा वासन्ती दुर्गा-पूजा का महत्त्व किसी भी मायने में कम नहीं है। क्योंकि इस पूजा की अष्टमी को माँ अन्नपूर्णा की विशेष पूजा और नवमी को श्रीरामचन्द्र की जन्मतिथि होती है अर्थात् रामनवमी। अतः भक्त वृन्द इस वासन्ती पूजा को भी शारदीय पूजा की तरह ही देवी की पूजा करने में अधिक उत्साहित रहते हैं। उत्तर भारत में रामानन्दी साधुलोग इस दौरान प्रतिपदा से नवमी तक रामचरितमानस का पाठ करते हैं। नवमी को पूर्णाहुति के साथ उत्सव सम्पन्न करते हैं। अन्त में ब्रह्माजी के शब्दों को दोहराते हुए, मैं देवी की प्रसन्नता हेतु प्रार्थना करता हूँ – **'त्वं वै स्वाहा त्वं स्वधा त्वञ्च वौषट् त्वञ्चोङ्कारत्वञ्च लज्जादिबीजम्। त्वं वै स्त्री च त्वं पुमान् सर्वरूपा त्वां संनत्वा बोधये नः प्रसीद'**।।[१८] ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – (१) ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीसीताराम वैदिक महाविद्यालय, कलकत्ता, १३९०, प्रकृति खण्ड, ६६।२२ **(२)** कृत्य-चिन्त्यमणि-वाचस्पति मिश्र **(३)** भविष्योत्तरपुराण **(४)** कालिका-पुराण, नवभारत प्रकाशन, कलकत्ता, १३८४, ६०/७९-८१ **(५)** वहीं ६०/२६ **(६)** बृहन्नन्दिकेश्वरपुराण **(७)** देवीभागवतम्, नवभारत प्रकाशन, १३८८, ३/३०।१८-२० **(८)** कालिका-पुराण, ६०।३० **(९)** वही, ६५।१ **(१०)** बृहद्धर्मपुराण, नवभारत प्रकाशन, १३९६, पूर्वखण्ड, २१।६६-६७ **(११)** वहीं २२।१-४ **(१२)** वही, २२।१४ **(१३)** सचित्र कृत्तिवासी रामायण, जेनरल लाइब्रेरी, कलकत्ता, १३६५, पृः ४३७ **(१४)** वही **(१५)** वही, पृः ४३८ **(१६)** वही, पृ. ४४१ **(१७)** वही, पृ. ४४१ **(१८)** बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड, २२।६

चेतना का केन्द्र – हृदय

मुझे किस चक्र में ध्यान करना चाहिए? हृदय में या मस्तक में स्थित चक्र में? स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उत्तर दिया – बेटा! ध्यान का अभ्यास तुम जिस चक्र में चाहो कर सकते हो। लेकिन मैं तुम्हें पहले हृदय में ध्यान करने की सलाह दूँगा। हृदय कमल में अपने इष्ट-देवता का ध्यान करो।'' तब शिष्य ने पुनः पूछा, ''लेकिन महाराज, हृदय तो मांस और रक्त से निर्मित है। मैं वहाँ भगवान का चिन्तन कैसे कर सकता हूँ?'' ब्रह्मानन्दजी ने कहा, मेरा अर्थ भौतिक हृदय से नहीं है। हृदय के निकट स्थित आध्यात्मिक केन्द्र का चिन्तन करो। प्रारम्भ में तुम जब देह के भीतर परमात्मा का चिन्तन करोगे, तो मांस और रक्त का विचार आयेगा। लेकिन शीघ्र ही तुम देह भूल जाओगे और इष्ट का आनन्दमय रूप ही रह जायेगा।

रामगीता (४/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

अभी एक सज्जन गिरधारीजी आए हुए हैं। उन्होंने एक घटना सुनायी। वैसे मुझे कथा में हँसी की बातें सुनाने का अभ्यास नहीं है। वे कथा सुनकर आए, तो बोले मैं आपको एक बात सुनाता हूँ। एक सेठ जी बड़े कृपण थे। कभी दान नहीं देते थे। पर कुछ लोग उनके पास पहुँच गये। उन्हें दान करने के लिये खूब उकसाया। दान देने से आपका बड़ा नाम होगा, लोग आपको दानी कहेंगे, आप अमर हो जाएँगे। तो उन्होंने तीन लाख का चेक काट दिया। बेचारे जो उन्हें कृपण समझ रहे थे, वे तो अपनी सफलता पर उछल पड़े कि इतना दान मिल गया। चेक लेकर बैंक पहुँचे। बैंक के कर्मचारी ने कहा, भले मानुष, चेक तो है, पर इसमें हस्ताक्षर नहीं है। वे लोग वापस आए और बोले – सेठजी, आप हस्ताक्षर करना भूल गए हैं। तो सेठजी बोले, तुमने कथा कल ध्यान से नहीं सुनी क्या? कथा में कहा गया कि दान नाम के लिये नहीं करना चाहिए। मैं चेक में नाम लिख देता, तो नाम की आकांक्षा प्रगट होती।

ऐसा अनामी मत बनिए। अब आप यहाँ आए हैं, तो आश्रम के लिये दान दीजिए और विज्ञान लेकर जाइए। यही तो विनिमय है, दान का बड़ा महत्त्व है, तो परशु दान है –

दान परशु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा।। ६/७९/८

श्रीराम कोदण्डधारी हैं। कोदण्ड, जहाँ विज्ञान है, वहाँ नाम-रूप का प्रश्न ही कहाँ है। वह नाम से परे ही है। इस संवाद का अर्थ आप गहराई से समझें। अहंता और ममता की बात पहले दिन स्वामीजी ने बतायी थी। उन्होंने कहा था कि ममता ही मृत्यु है और ममता का त्याग ही जीवन है। उसमें एक संकेत है। इस पूरे संवाद का तात्पर्य यह है कि बड़ा-से-बड़ा व्यक्ति भी अगर सगुण होने के बाद अपने आप को सगुण मान लेगा, तो गुणत्व का संकट आयेगा। गुणत्व माने जाति का संकट आयेगा। सब का जन्म किसी न किसी जाति में होता है, किसी घर में होता है, किसी पिता-माता से होता है। वह भी व्यवहार का एक सत्य है। उस व्यवहार के सत्य को जो तत्त्व मान ले, तो उचित नहीं होगा। भगवान राम का अवतार क्षत्रिय जाति में हुआ, परशुरामजी के रूप में अवतार ब्राह्मण जाति में हुआ। ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति में किसी का जन्म होना, तो एक अलग बात है, पर जन्म के बाद क्या वह परम सत्य है? दो अवतारों के सन्दर्भ में वह जो तर्क है, विवाद है, उसका महत्त्वपूर्ण सूत्र यही है। परशुराम जी महाराज अपने आप को समझते थे कि मैं महान त्यागी हूँ, महान विरागी हूँ। वे समझते थे कि मुझमें ममता का सर्वथा अभाव है। देखें, बहुत बढ़िया मनोविज्ञान है। ममता का त्याग इतना कठिन है कि साधारण क्या, बड़े से बड़े व्यक्ति नहीं कर पाते। पूर्ण विराग जब हो जाता है, तब छूटती है ममता। ज्ञान दीपक से घबराते न हों, तो उसे एक बार पढ़िए। पूरा वैराग्य होगा, उसके बाद ममता जायेगी –

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई।।
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई।।
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।।
परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।।
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै।
मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता।।
जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ।।
७/११६/९-१६, ७/११७ (क)

इतना होने के बाद विराग आता है। नाम के तो कोई भी विरागी हों। आज मुझे भी एक विरागी मिल गये थे। मैं एक भक्त के घर गया था। वे एक विरागी हैं। नित्य कथा में वे विरागीजी आते हैं, मुझसे नित्य मिलते हैं। पर वहाँ विरागी जी के परिवार में बड़ा अच्छा दर्शन हुआ। वे बड़े निकट से जुड़े थे। जब देवी मेरे लिए काजू, किसमिस आदि कुछ भोग लगाने की सामग्री ले आईं, तो वे तुरन्त बोल पड़े, बस इन्हें देख लीजिए। हमने कहा, ये पक्के विरागी हैं, सोचते हैं कि जो खाएगा, वह तो रागी ही होगा। विरागी वह होगा कि जब सामने रख दे, तो केवल देख ले। मैंने विनोद में कह दिया कि आप पक्के विरागी हैं। उन्होंने कह दिया था, केवल देख लीजिए, पर मैंने विनोद में एक-दो काजू ले लिये। तो उन्होंने क्या किया कि तीन-चार काजू-किसमिस मेरे हाथ में पकड़ा दिया। किसी ने कहा कि देखिए ऐसा केवल कहा था, पर वे चाहते हैं कि आप लें, इसलिए हाथ में दे दिया। मैंने कहा, इसलिए थोड़े ही हाथ में दे दिया कि खाना। कहीं ऐसा न शुरू कर दें कि पूरा ही खा जायें, इसलिये चार ही दे रहे हैं, इतना ही लीजिए, बहुत हो गया। ये तो विरागी जी थे, जो शब्द से और कार्य से मुझे भी विरागी बनाना चाहते थे। मैं तो विरागी था ही नहीं।

विरागी तो इतना कठिन है कि इतना जब गुण आ जाये, श्रद्धा आ जाये, भाव आवे, विश्वास आवे, अहिंसा आवे, मुदिता आवे, विचार आवे, तब कहीं जाकर विचार मंथन हो, उसके बाद उसमें वैराग्य का नवनीत निकले, उसके बाद पूर्ण वैराग्य आ जाये। उसके बाद शब्द आता है –

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ।।

इतने सब आ जाये और इसके फलस्वरूप जब वैराग्य आ जाये, तब ममता जाती है। बहुत जल्दी में दूसरे को ममता वाला और अपने को विरागी मानने की भूल न करना। यहाँ तक कि परशुरामजी जैसा महापुरुष यही समझते थे कि ये लोग तो ममता वाले हैं। देखो, जनकजी कैसी ममता वाले हैं। अपनी बेटी के विवाह के लिए शंकरजी का धनुष तुड़वा दिया। यह राजकुमार की कैसी ममता है, विवाह करने के लिए बिना सोचे-समझे धनुष को तोड़ दिया ! उनको लग रहा है कि निर्मम केवल मैं हूँ, बाकी सब में ममता है। पर ममता से मुक्त होना कितना कठिन है, इसको लक्ष्मणजी ने धीरे से बताया। जो कुछ उन्होंने प्रारम्भ में कहा, इसका अर्थ झगड़े के रूप में लिया। बाद में जब उसके अर्थ पर विचार किया, तो ठीक लगा। जब परशुरामजी ने जनक से पूछा – धनुष किसने तोड़ा? तो एक उत्तर वह था, जैसा हम और आप देते हैं। जैसे किसी ने पूछा, यह किसने किया? तो बलवान हुए तो कह देते हैं, हमने किया, क्या कर लोगे, बताओ। चलो हो जाये। हो ही जाता है। अब जनकजी तो बोल ही नहीं रहे हैं। श्रीराम कह सकते थे – मैंने तोड़ा है, क्या करेंगे आप? पर राम ने नहीं कहा। क्योंकि वे सगुण होते हुए भी अगुण हैं। कर्ता दिखाई देते हुए भी वे अकर्ता हैं। दिखाई दे कर्ता, पर भीतर से अकर्ता हो। श्रीराम चाहते तो सीधे कह सकते थे, पर उनकी भाषा स्पष्ट नहीं थी। परशुरामजी कह सकते थे कि यह कौन-सी भाषा है? सीधे नाम बताओ कि किसने तोड़ा? भगवान राम कहते हैं –

नाथ संभुधनु भंजनिहारा।
होइहि केउ एक दास तुम्हारा।। १/२७०/१

वह तो आपका ही कोई दास होगा, जिसने शंकर का धनुष तोड़ दिया होगा। परशुरामजी बोले – तुम बड़े विचित्र हो। पहले तो परशुरामजी यह मान ही नहीं रहे थे कि धनुष को राम ने तोड़ा है। वे तो यही समझ रहे थे कि तोड़नेवाले को बचाने के लिए 'केउ एक' कह रहे हैं। बेचारे किशोर हैं, डरते हैं कि कहीं मैं सिर न काट लूँ। उन्होंने कहा कि तुम सेवक की परिभाषा बदलना चाहते हो क्या? कह रहे हो कि शंकर का धनुष तोड़नेवाला मेरा दास होगा। क्या यही दास की परिभाषा है? सेवक तो वह है जो –

सेवकु सो जो करै सेवकाई।
अरि करनी करि करिअ लराई।। १/२७०/३

सेवक का कार्य सेवा करना है, शिव का धनुष तोड़कर शत्रुता करना नहीं है। लक्ष्मणजी खड़े हैं। लक्ष्मण जीवों के आचार्य हैं। उनको लगा कि यदि ऐसी ही बातें होती रहीं, तो यह संवाद कितना लम्बा चलेगा? भगवान राम यदि परशुरामजी से ऐसी रहस्यमयी भाषा बोलते रहेंगे, तब तो यह गुत्थी नहीं सुलझेगी कि धनुष किसने तोड़ा और क्यों

तोड़ा? तो उन्होंने सोचा कि अब कुछ स्पष्ट भाषा में मुझे भी बोलना पड़ेगा। लक्ष्मणजी की भाषा कड़वी तो होती है, पर बिल्कुल सत्य होती है। उन्होंने तुरन्त श्रीराम के बोलने से पहले ही परशुरामजी से निवेदन किया। श्रीराम तो चुप हो गए, अब लक्ष्मणजी ने कहा, महाराज, धनुष पहली बार टूटा है क्या? बचपन में हम चारों भाई खेला करते थे और खेल में कई बार धनुष तोड़ दिया करते थे, पर आप तो कभी नहीं आए। अगर धनुष का टूटना कोई इतनी बड़ी बात होती या बड़े आश्चर्य की बात होती, तो आपको तभी आना था। कितना बड़ा प्रश्न है। अगर कोई वस्तु विनष्ट हो जाती है, तो किसी वस्तु का विनष्ट होना पहली घटना है क्या? किसी ने एक सन्त से कहा – महाराज, एक युवक की मृत्यु हो गई, बड़ा आश्चर्य है ! सन्त बोले, इसमें आश्चर्य क्या है? –

दस द्वारे का पींजरा, तामें पंछी पौन।
रहने में अचरज बड़ा, गये अचंभा कौन।।

अगर पिंजरे का एक दरवाजा खुला रह जाए, तो पंछी उड़ जाता है। पर यहाँ तो शरीर के पिंजरे में दस-दस दरवाजे हैं, उसमें वायु के रूप में प्राण है, वह चला गया, तो इसमें आश्चर्य क्या है? लक्ष्मणजी पूछते हैं, महाराज इस सृष्टि में धनुष पहली बार टूटा है क्या? क्यों? बोले – लड़कपन में हम लोग कई बार धनुष तोड़ दिया करते थे। बहुत बड़ी बात कही गई थी। पर मुझे तो बार-बार घड़ी की ओर ही देखना पड़ रहा है। क्योंकि हमारे महात्माओं के भोजन का समय भी मैं ले ही ले रहा हूँ। अब अधिक समय लेना उचित नहीं है, पर एक बात तो मैं बता ही दूँ। लक्ष्मणजी ने एक संकेत किया कि क्या नित्य किसी न किसी की मृत्यु नहीं होती? जब होती है, तो उन सबकी मृत्यु के लिये दुखी होकर आप आँसू बहाते हैं क्या? तब उन्होंने कहा कि महाराज आप समझते हैं कि आप बड़े निर्मम हैं, न पत्नी की इच्छा है, न धन की, न पद की, किसी की इच्छा नहीं है। महाराज सब जगह आपने ममता छोड़ दिया, पर यहाँ तो ममता जोड़ ही लिया आपने। फिर कैसे आप ने मान लिया कि आपमें ममता नहीं है। कहाँ छूटी है ममता आपकी?

एहि धनु पर ममता केहि हेतू। १/२७०/८

सबकी ममता छोड़कर बस यह धनुष ही रह गया ममता करने के लिये। कितनी बड़ी बात है ! बड़ा से बड़ा व्यक्ति भी दावा नहीं कर सकता। हम दूसरों के लिये कह सकते हैं कि क्या ममता में पड़े हुए हो, या क्यों वह ममता में पड़ा हुआ है? किन्तु पहले स्वयं को देखो कि तुम कहाँ हो? स्वयं को ममता से मुक्त माने हुए हो। कोई यह भ्रम में न रहे कि उसमें ममता नहीं है। ममता में कौन नहीं है? भगवान राम ने कहा कि ममता तो बड़ी फैली हुई है। उसमें एक शब्द था, सबसे बड़ा ममता का केन्द्र क्या है? क्या स्त्री, पुत्र, परिवार है? नहीं, शरीर है। ममता जो बनती है, वह शरीर को केन्द्र बनाकर बनती है। बोले, सब कुछ मैंने छोड़ दिया, पर शरीर को छोड़कर आप कहीं चले जाएँगे क्या? भगवान ने कहा – आपने सब कुछ छोड़ दिया, किन्तु ममता का केन्द्र जो शरीर है, वह तो साथ ही चल रहा है। बहुत कठिन है छोड़ना। उन्होंने कहा – महाराज, आप जरा सोचें। आपने सिद्धियों से, सम्पत्ति से, पद से, पत्नी से, ममता छोड़ी, लेकिन –

एहि धनु पर ममता केहि हेतू।

कितनी विलक्षण बात है ! आपका क्रोध, आपका दुख, धनुष टूटने से नहीं है। अगर धनुष टूटने से दुख होता, तो जनक को होना चाहिए। पर वे तो कितने प्रसन्न लग रहे हैं! उनसे भी अधिक क्रोध शंकरजी को आना चाहिए, जिनके नाम पर आप झगड़ा करने आए हैं। शंकरजी से किसी ने कहा, महाराज ! धनुष टूट गया। उन्होंने कहा, मेरा धनुष कहाँ टूट गया? मैंने तो उसे जनक को दे दिया था, वह मेरा कहाँ रह गया। जनकजी से पूछा, तो बोले, वाह, इससे बढ़कर कृपा और क्या हो सकती है ! धनुष टूट गया और हमारे कर्तृत्व और वैराग्य का अभिमान मिट गया। आज हमारी पुत्री का, ईश्वर और शक्ति का मिलन और विवाह हो रहा है। उन्होंने ममता सचमुच छोड़ी और आपने ममता जोड़ी और वह भी केवल धनुष से जोड़ी, अनित्य से जोड़ी। दुख का हेतु यही है। सूत्र यही है। अहंता बड़ी कठिन है। बड़े से बड़े व्यक्ति में आ जाती है। ममता से शून्य होना बहुत ही कठिनतम है। अहंता और ममता कितनी जटिल है, अगुण, सगुण का जो विवाद था, वह किस रूप में समाप्त हुआ, इसकी चर्चा कल होगी।

।। बोलिये सियावर रामचन्द्र की जय।। **(क्रमशः)**

दुर्गा-पूजा विशेष

वेदों में दुर्गा-पूजा

उत्कर्ष चौबे

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शास्त्रीय दुर्गोत्सव को प्राचीन भारतीय जनमानस ने दुहितृवात्सल्य की अमृतधारा से अभिषिक्त कर सदैव सजीव रखा है। केवल शास्त्रीय विधि-विधान के पालन हेतु ही दुर्गोत्सव नहीं, अपितु इसके साथ ही साथ एक प्रकार का गृहस्थ जीवन से स्थापित सम्बन्ध होना ही इसका प्राण है, जगदम्बा के साथ मातृत्व की स्नेहिल भाव का आकर्षण ही दुर्गोत्सव है। यह दुर्गा पूजा होते हुए भी, अन्य देवताओं की पूजा की तरह केवल मात्र पूजा नहीं, उत्सव है – मातृसदन का, वर्ष भर की प्रतीक्षा का, भगवती के भुवनमोहिनी श्रीमुख के पावन दर्शन का, उत्सव है – प्रकृति के निर्मल आकाश में श्वेत मेघों के दर्शन का, पृथ्वी के आनन्द का, जो हैमवती के आगमन पर हरश्रृंगार के पुष्पों को उनके स्वागत में बिखेर देती है। उत्सव है – पाषाणमय हिमालय के कन्यास्नेह से विगलित होने का, कितने अनुनय-विनय कर भोलेनाथ के उजड़े संसार से वर्ष में मात्र त्रिदिवसीय पार्वती को मायके लाने के अधिकार का। हिमालय के ममत्व की पीयूषधारा से मधुरित स्वगृह में बिटिया के शुभागमन के महानन्दोत्सव को हिन्दू जनमानस अपने हृदय में संचित कर सजीव करता है, यह दुर्गोत्सव।

भावजगत से दुर्गोत्सव का तो अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, जो मातृभक्ति की अनवरत धारा के रूप में सदैव विगलित होती है। किन्तु धर्म-जिज्ञासा का पहला वचन श्रुति-प्रमाण को ही सर्वोच्च माना जाता है। शास्त्रकारों का आदेश है –

धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।
द्वितीयं धर्मशास्त्रं तु तृतीयं लोकसंग्रह ः।।

संसार की समस्त विद्याओं का वर्णन वेद भगवान स्वयं करते हैं। वेद ही हमारे ज्ञान का मूल स्वरूप हैं। ऋग्वेद के रात्रिसूक्त के मध्यभाग में वर्णित है –

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं, वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये, सुतरसि तरसे नमः।।[१]

जो अग्नि को वर्ण प्रदान करती हैं (ऐसी व्याख्या श्वेताश्वतर व छान्दोग्य को मिलाने से प्राप्त होती है। ऐसा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्वाचार्य व ब्रह्मसूत्र के शक्तिभाष्यकार महामहोपाध्याय पंडित पंचानन तर्करत्न का अभिमत है।) अथवा अग्नि के समान जिसका वर्ण है, जो तपस्या के (यस्य ज्ञानमयं तप:) अर्थात् ज्ञानमय तपस्या के द्वारा जो देदीप्यमान हैं, जो सूर्य, चन्द्र व अग्नि की प्रकाश शक्ति हैं, कर्म एवं फल से सेविता – कर्मसेवा हो अथवा

फलसेवा हो, उभय के द्वारा ही जो सेवारत हों – (अथवा) कर्मफल लाभोद्देश से जो सेविता हैं, ऐसी भगवती दुर्गा का मैं शरणापन्न होता हूँ।

यह तो मात्र स्थूलार्थ है, किन्तु दो और रहस्यार्थ अर्थात् निगूढ़ अर्थ भी है, जिसमें एक तो योग-साधना में उपयोगी होगा और दूसरा हमारे दुर्गोत्सव के लिए उपयोगी होगा। दोनों ही रहस्यार्थ शास्त्रों में उपदिष्ट हुये हैं, किन्तु हमारा ध्यान दुर्गोत्सव पर ही केन्द्रित होगा। यहाँ किसी-किसी व्यक्ति के मन में एक प्रश्न उठना स्वाभाविक भी है कि वेदों का क्या रहस्यार्थ होता है? उसका प्रमाण क्या है? प्रत्युत्तर में मनु महाराज लिखते हैं – "**वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना।**"[२]

व्याख्याकार कहते हैं कि रहस्य शब्द का तात्पर्य उपनिषदों से है। मेघातिथि ऋषि का कथन है – 'सत्यपि वेदत्वे प्राधान्यात् पृथगुपादानम्'। उपनिषद वेद के शेष भाग ही हैं, अत: समग्र वेद शिक्षा-प्राप्ति के अन्तर्गत आ ही जाते, किन्तु रहस्य शब्द के द्वारा विशेष निर्देश का तात्पर्य उसकी महत्ता के कारण ही है।

वेदपाठ में पाठ शब्द का अर्थ शब्दाभ्यास है, किन्तु यहाँ रहस्यमय अर्थ से नहीं है। इस सिद्धान्त के ऊपर ही प्रधानत: निर्भर होकर आचार्यगण व्याख्या करते हैं, उनका यह मत शिरोधार्य है। किन्तु यदि हम कहें कि यह वचन केवल पाठ विधायक ही नहीं, अपितु अर्थज्ञान का भी बोधक है, इसमें रहस्य का अर्थ भी ज्ञातव्य है, तो यह असंगत नहीं है। वस्तुत: यह मनु महाराज द्वारा अभिप्रेरित है, उनके अन्य श्लोक से हम इसकी पुष्टि करेंगे –

यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्य्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति।।[३]

जिस प्रकार खनन-यन्त्र की सहायता से मिट्टी खोदते-खोदते बहुत प्रयास से मनुष्य उसके भीतर के जल को प्राप्त करता है। ठीक उसी प्रकार छात्र गुरु-सेवापरायण होकर बहुत प्रयास के द्वारा गुरु-परम्परा से चली आ रही विद्या को प्राप्त करता है। शब्दाभ्यास या स्थूलार्थ प्राय: सभी शिष्य ही कर पाते हैं, किन्तु गूढ़ार्थ केवल वही शिष्य अर्जित कर पाते हैं, जो अपनी शुश्रूषा के द्वारा गुरु को प्रसन्न कर पाते हैं।

जिस प्रकार न्यायादि दर्शनशास्त्रों में स्थान-विशेषों में जो रहस्य हैं, वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत का रहस्य है, ज्योतिष और तन्त्रशास्त्रों का रहस्य स्व-स्व सम्प्रदायों में प्रतिष्ठित है, ठीक उसी प्रकार वेदों का भी रहस्य है, जिसे उपयुक्त अधिकारी शिष्य ही गुरु से प्राप्त करता है। इसलिये गुरुमुखी विद्या का सम्मान था। समयानुसार उपयुक्त शिष्यों के अभाव में रहस्य एक प्रकार से आवृत हो गया, जो पुराणकर्ता ऋषियों के माध्यम से, तो कभी स्मृतिकार ऋषियों की कृपावृष्टियुक्त लोकहितार्थ सरल भाषा में समस्त अर्थों में प्रकाशित हुआ। उपरोक्त वेद-मन्त्रों का रहस्य निम्नलिखित रूप से पुराणों में अभिव्यक्त हुआ है –

शारदीया महापूजा चतु:कर्ममयि शुभा।
तां तिथित्रयमासाद्य कुर्याद्भक्त्या विधानतः।।[४]
व्रती प्रपूजयेद्देवीं सप्तम्यादिदिनत्रये।[५]

शरत्काल में सप्तम्यादि प्रमुख तीनों तिथियों में विशेष नियम से भगवती दुर्गा की चतु:कर्ममयी महापूजा करनी चाहिए। यही पूर्वलिखित 'तामग्निवर्णां ...' इत्यादि वेदमन्त्रों का रहस्य या निगूढ़ार्थ है। सर्वप्रथम इस मन्त्र की संस्कृत टीका हम देखते हैं – "**अहं कर्मफलेषु ज्वलन्तीं अग्निवर्णां वैरोचनीं (व्याप्य) तपसा जुष्टां तां (वारिरूपां) देवीं दुर्गाम् शरणं प्रपद्ये इत्यन्वयः। कर्मफलेषु कर्मणः कृषेः फलेषु प्रसवेषु गर्भमञ्जरीपक्वरूपेषु सत्सु बहुवचनेन शस्यानामवस्थात्रयलाभः। शरत्-काले हि केचिद् व्रीहयो गर्भशय्याः केचिच्चोदगतमञ्जरीकाः, केचिच्च पचयन्ते, हेमन्ते तु व्रीहीणां नैवमवस्था त्रयं किन्तु पाकावस्थैवेति तदव्यवच्छेदेन शरत्काललाभः, शरदि इति तदर्थः। ज्वलन्तीं दीप्यमानामिति शुक्लपक्षलाभः, अग्विवर्णा अग्निशब्दस्त्रित्व-संख्यापरः स च संख्या तात्पर्येणात्र विग्रहगता ग्राह्य। तत्र वर्णः स्तुतिः प्राथम्येनाभिधानां यस्या सा अग्निवर्णा, ज्वलन्तीं ज्योतिष्मतीं शुक्लपक्षीयां वैरोचनी सप्तमीतिथिं वैरोचनी शब्दस्य नानार्थत्वादत्रार्थद्वयग्रहणं वैरोचनी सूर्यसम्बन्धिनी, वैरोचनी चान्द्री चन्द्रकलारूपा तत्क्रियारूपा वा तिथिरिति यावत् सूर्यसम्बन्धिनी तिथिः सप्तमी भास्करे प्रोक्तेति पद्मपुराणवचनात्। कालाध्वाभ्यामतिसंयोगे द्वितीया। तदर्यश्च जुष्टामिति क्रियान्वयी। 'तपसा' कर्तृमात्रगतनियमरूपेण-कर्मगत-पूजनादेवैशिष्ट्येन च 'जुष्टां' सेवितां ता रात्रिस्वरूपां कालरात्रिमहारात्रिर्माहारात्रिश्चेति सप्तशत्युक्तेः एतेनास्य मन्त्रस्य रात्रिसूक्तानन्तर्गतत्वशङ्का निरस्ता। देवीं द्योतमानां स्वप्रकाशामेतेन जडमात्रत्वव्यवच्छेदः, चितिरूपेण या कृत्स्नमिति सप्तशतीस्मरणात् दुर्गां शरणं प्रपद्ये।**"

इस प्रकार अग्निवर्णा शब्द का अर्थ प्रधानत: तिथित्रय

का आदि, वैरोचनी शब्द का अर्थ है सप्तमी, ज्वलन्ती शब्द का अर्थ शुक्लपक्ष में होनेवाली, कर्मफलेषु, अर्थात् कृषि कर्म का फल – शस्य, विभिन्न प्रकार के धान्य शरत्काल में ही गर्भरूप, मंजरीरूप व पक्वरूप – तीनों अवस्थाओं में पाया जाता है। तपसा अर्थात् साधक जो विशेष नियमों में रहता है एवं जो पूजा – बाह्य तपस्या आदि कर्मों में नाना प्रकार के नियमों से युक्त होगा। उसे ही महापूजा या महोत्सव कहा जा सकता है।

इस प्रकार मन्त्र का अर्थ है – शरत्काल के शुक्ल पक्ष की सप्तमी आदि तीनों तिथियों में नियमत: साधक, विशिष्ट नियमों के साथ जो अहोरात्रव्यापी आराधना 'उत्सव' करते हैं, रात्रिस्वरूपा (सप्तशती में वर्णित कालरात्रि आदि स्वरूपा) उन्हीं ब्रह्ममयी दुर्गा देवी का मैं शरणापन्न हूँ।

शरत्काल में दो शुक्ल पक्ष होते हैं – आश्विन व कार्तिक मास में। किन्तु 'प्रथमोपस्थित परित्यागे मनोभावात्' न्यायानुसार आश्विन शुक्ल पक्ष ही मन्त्र में ग्राह्य है। अर्थवाद द्वारा विधि का अनुमान किया जाता है। अतएव वेदों में दुर्गोत्सव का मूल स्वरूप विद्यमान है।

यदि कहा जाए कि दुर्गापूजा का मूल उल्लेख वेदों में वर्णित है, किन्तु हिमालय की पुत्री रूप में दुर्गा की दुहितृवात्सल्य भावना भक्तों की भावमयी कल्पना मात्र ही प्रतीत होती है। पिता-पुत्री के सम्बन्ध का श्रुति प्रमाण तो नहीं, वरन् यह तो पुराणों की कहानियाँ है, दादी-नानी की लौकिक कथाएँ हैं। तो इसका उत्तर हम दर्शनशास्त्र से देंगे। समस्त आस्तिक महापुरुषों का मूल दर्शन ब्रह्मसूत्र ही है, जिसके द्वारा हमारी शंका का समाधान हो जाएगा – 'ईक्षतेर्नाशब्दम्'।[६]

पर्वतराज हिमालय की पुत्री रूप में जगदम्बा अवतीर्ण हुईं थीं, इसका 'न अशब्दं' से श्रुति-प्रमाण सिद्ध होता है। क्योंकि 'ईक्षते:' ईशधातुघटित एक श्रुति सन्दर्भ ही है, जो केनोपनिषद के तृतीय खण्ड में आता है। सन्दर्भित खण्ड में ईक्ष्धातु का एकमात्र प्रयोग प्राप्त होता है और वही ईक्षण देवों का ही है, जो निश्चित रूप से उसी स्थान पर हेमवती उमा के दर्शन का कारण है। इसीलिए सूत्र में पंचमी का एकवचनान्त शब्द 'ईक्षति' है। व्याकरण के नियमों में धातु निर्देश में 'श तिप' (ति) प्रत्यय का प्रावधान है। धात्वर्थ निर्देशित नहीं है। क्वचित् धात्वर्थ निर्देशित होने पर यह व्याकरणविरुद्ध है। किसी अव्याकरणिक कार्यान्वयन के सन्दर्भ में किसी अन्य अव्याकरणिक प्रयोग का समर्थन करना उचित नहीं है। एक इक्ष् धातु-घटित है, उसका श्रुति सन्दर्भ यथा – "**त ऐक्षन्तास्माकमेवाय विजऽयोहस्माकमेवायं महिमेति...स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभनामुमां हैमवतीम् ...।**"[७]

तात्पर्य यह है कि भगवान की अहैतुकी कृपा से देवता विजयी हुए, किन्तु उन्होंने उस जीत को अपनी बताते हुए, स्वमहिमा का गान करते हुए देव सभा में अहंकार से फूले नहीं समा रहे हैं। सर्वज्ञ कृपालु भगवान उन्हें ज्ञान प्रदान करने के लिए एक अपूर्व मूर्ति के रूप में देवों की सभा के सामने प्रकट हुए। उस मूर्ति को देखकर देवता जिज्ञासु हो गए और उन्होंने अग्नि को उनके समीप भेजा। अग्नि को आते देख उस अद्‌भुत मूर्ति ने पूछा, आप कौन हैं? जब अग्नि ने अपना अग्नि व जातवेद नाम बाताया, तब उन्होंने उनके सामर्थ्य के विषय में पूछा। अग्नि ने गर्वोन्मत्त हो कहा कि उनमें संसार की हर वस्तु को जलाने की क्षमता है। उस दिव्य मूर्ति ने सामने तृण का एक टुकड़ा रखते हुए कहा कि इसे जला दो।

अग्नि क्रमश: अपनी सारी शक्तियों को लगाकर भी उस घास को नहीं जला सके और अन्तत: लज्जित होकर देवताओं से कहा कि वे उसे जान नहीं सके। फिर वायु को भेजा गया। उन्होंने अपना वायु व मातरिश्वा नाम बताया और अपने सामर्थ्य का परिचय देते हुए कहा कि पृथ्वी पर जो कुछ भी है, वे उसे आत्मसात् कर सकते हैं। अब उनकी भी परीक्षा हुई, किन्तु वे भी उस तृण को हिला तक नहीं सके। वायु ने वापस आकर अपनी असमर्थता व्यक्त की। तब देवताओं ने इन्द्र से उसे जानने का आग्रह किया। अन्त में स्वयं देवराज इन्द्र उठे, किन्तु उनके आते ही अपूर्व मूर्ति अन्तर्हित हो गई और उस शून्य स्थान पर उन्होंने किरीटादि भूषणोपभूषणों से शोभायमान एक सुन्दर नारी हैमवती उमा को देखा।

हिमवान् + अपत्यार्थ में अण् या ष्ण, स्त्रीलिंग में हैमवती है। हिमवान हिमालय का ही नाम है, जिसका उल्लेख हमें महाभारत के भीष्म पर्व में वर्ष-पर्वतों की नाम गणना के क्रम में पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्रावगाही हिमवान के रूप में प्राप्त होता है। कालिदास का वही '**हिमालयो नाम**

नागाधिराजः। पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः।।' – पर्यन्त अविकल वर्णन है। अतएव हिमालय के साथ भगवती उमा का पिता-पुत्री का सम्बन्ध वेदपरक तथा उपनिषदप्रमाणसिद्ध है। हंसावती ऋक् में भी है – 'अद्रिजा ऋतं बृहत्'[८] अद्रिजा पार्वती का एकार्थक शब्द है, वही ऋतं बृहद् - ब्रह्म है।

ब्रह्म ही ईश्वर हैं, केनोपनिषद के अनुसार उन्होंने अपूर्व मूर्ति को छोड़कर देवराज इन्द्र को हैमवती मूर्ति धारण कर दर्शन दिया तथा उनकी जिज्ञासा को शान्त करते हुए घोषित किया कि उन्होंने जिस अपूर्व मूर्ति को पहले देखा था, वह ब्रह्म ही है। ऋग्वेदानुसार केवल ब्रह्म ही ब्रह्म को जानते हैं, और हैमवती उस ब्रह्म को ब्रह्म के रूप में जानती हैं। इसीलिए तो अर्जुन गीता में कहते हैं – "**स्वयमेवात्मनात्मानं बेत्थ त्वं पुरुषर्षभ।**" हंसावती ऋचा की यह व्याख्या तंत्रपुराणादि सम्मत हैं, यद्यपि सायण या निरुक्तकार के अनुकूल नहीं है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वेदों का गूढ़ अर्थ है और पुराणों की रचना उन्हें प्रकट करने के लिए ही हुई है। इसलिये महाभारत में यह स्पष्ट कहा गया है – "इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेद्।'[९]

अब ऋग्वेद के उक्त मंत्र का भी अवलोकन कर लेना उचित होगा – "**हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्ष, सद्धोताऽवेदिषदतिथिदुरोणसत। नृषद्-वर-सद् ऋत सद्-व्योम-सदब्जा, गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्।।**"

इस मन्त्र का नाम 'हंसावती ऋचा' है। इसका भावानुवाद निम्न-लिखित है – सूर्य-देव को यह ज्ञात हुआ कि पार्वती-पर-ब्रह्म हैं, सिंह-वाहिनी और महिषासुर-निहित-पृष्ठचरणा दुर्गा-मूर्ति हैं। आश्विन मास और पावनी तिथि-समूह से उनका विशेष सम्बन्ध है। उनमें सप्तमी, महाऽष्टमी और महानवमी तिथि में होमादि चतु:कर्ममयी पूजा करने की विधि है। असमर्थ होने से केवल महा-नवमी के दिन ही हवन करना चाहिए। स्नान, पूजा, बलि-दान और होम – इस चतु:कर्ममयी महापूजा के चारों कर्मो का निर्वाह करना चाहिए। उपरोक्त वेदोक्त मन्त्र (ऋग्वेद ४ सं, ४०सू, ५ ऋ) की यह व्याख्या आचार्यप्रवर श्री पञ्चानन तर्क-रत्न महाशय की है, जो यह प्रमाणित करते हैं कि 'ऋग्वेद-काल' में भी 'शारदीया दुर्गा-पूजा' प्रचलित थी। हो भी क्यों न? महामाया भगवती की ही दाहिने भुजाओं से वेदों की तथा वाम भुजाओं से तन्त्रशास्त्र की उत्पत्ति हुई है। तभी तो मिथिलेशनन्दिनी गौरी पूजन करते हुए कहती हैं –

नहिं तव आदि मध्य अवसाना।
अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना।।

इस चतु:कर्ममयी पूजा से यह नहीं समझना चाहिए कि यह पूजा केवल बाह्यिक है। इस मन्त्र में 'व्योम सत्' शब्द उनके समूह को सूचित करता है। 'व्योम सत्' – शब्द साधारण व्योम नहीं है। यह 'दहराकाश' है, जिसका भावार्थ 'सूक्ष्म हृदयाकाश' है। पार्वती वहीं ध्येया हैं। व्यापिका होने पर भी देवी वहीं स्थिता हैं, उनको वहीं खोजना चाहिए।

देवी की जिस प्रकार 'बाह्य-पूजा' होती है, उसी प्रकार 'मानस-पूजा' भी है। 'हृदयाकाश' में देव्युपासना उनकी 'मानस पूजा' है। 'हृदयाकाश' में देवी की अवस्थिति सूक्ष्म भी है और स्थूल भी। स्थूल-रूप में देवी के साथ लक्ष्मी और सरस्वती हैं, कार्तिकेय और गणेश भी हैं। स्थूल-रूप उनकी इच्छा की महिमा है। उपनिषद में पर-ब्रह्म देवी सर्वत्र विराजिता हैं। एकाग्र-चित्त मनुष्य श्रेष्ठ प्रतिमा-पूजक है। हृदय में जो 'व्योम-सत्' है, एकाग्र-चित्त साधक उसकी पूजा शारदीया दुर्गापूजा के पावन अवसर पर सपरिवार प्रतिमा में करता है। उसके अनन्तर 'बाह्य-पूजा' है। इस पूजा में भी साधक 'हृदयाकाश' को विशाल-रूप से अनुभव करता है। एकाग्र-चित व्यक्ति यदि प्रतिमा में एकत्व-बोध से चिन्मयी और मृण्मयी देवी की साधना करे, तो उसके पश्चात् निरुद्ध अवस्था आती है। इस अवस्था में उसकी 'मातृ-साधना' केवल हृदय में ही रहती है।

इस प्रकार हमने दुर्गोत्सव का श्रौत प्रमाण देखा, किन्तु कई लोग उल्लिखित मन्त्रों की इस व्याख्या से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। कोई बात नहीं, आप जितना भी तर्क करें, केनोपनिषद के उमा हेमवती प्रसंग को नकार नहीं सकते और न ही दुर्गासूक्त के दुर्गा शब्द को ही। सायणाचार्य ने भी उक्त मन्त्र की व्याख्या में 'नवदुर्गा कल्प' का उल्लेख करते हुए पौराणिक देवी दुर्गा की ओर ही सन्दर्भित किया है। इस प्रकार हिमालय और उमा के वेदोक्त सम्बन्ध को लेकर ही हमारे सदाचार चिर जीवित हो आनन्दमय दुर्गोत्सव का स्वरूप लेते हैं। यह निरर्थक नहीं है, वेदमूलक सत्य है, यही ऋत है। शास्त्र भी सत्य है, वे भी सत्य हैं और उनकी आराधना भी सत्य है। वात्सल्यहीन मैं, उन सर्वशास्त्रमयी सत्यानन्दस्वरूपिणी को मातृभाव से ही प्रणाम करता हूँ।

परमकरुणामयी जिसने मुझ अकिंचन को अपनी महापूजा करने का अवसर दिया है, सुख-दुख में प्रत्यक्ष रूप से जो मेरा पालन कर रहीं हैं और सादर कृपा करके जो अपने अंक में धारण करेंगी, इस बात का सम्बल लेकर पृथ्वी प्रवास पर दृढ़ विश्वास से रहते हुए, सैदव उनके पादपद्मों की कृपा अनुभव करता हुआ मैं भक्तिहीन होते हुए भी, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' इस भाव को आत्मसात् करते हुए उन्हें शत सहस्त्र बार प्रणाम करता हूँ –

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते।।

OOO

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. ऋग्वेद ८.७.१४ **२.** मनुस्मृति २/१६५ **३.** मनुस्मृति २/२१८ **४.** स्मार्तधृत लिंगपुराण **५.** स्मार्तधृत भविष्य पुराण **६.** ब्रह्मसूत्र १/१/५ **७.** केनोपनिषद् तृतीय खण्ड ३/२,१२ **८.** ऋग्वेद ३/४/१४ **९.** आदिपर्व १, अध्याय २६७ **१०.** वृह १/३/६/१०

कविता

माँ, दुख भी तो वरदान तुम्हारा

आनन्द तिवारी 'पौराणिक', महासमुँद

आशीषों का आंचल, मुझ पर होता प्यारा ।
माँ, दुख भी तो वरदान तुम्हारा ।।
जब जग के सब उपक्रम, कुछ काम न आते ।
तन–बल, धन-बल, जन-बल व्यर्थ हो जाते ।।
काम नहीं आता जब पुरुषार्थ जहाँ ।
एक आस हारे को, तेरा नाम वहाँ ।।
व्याधि, विपत्ति, घोर विपदा में, तुम ही होती सहारा ।
माँ, दुख भी तो वरदान तुम्हारा ।।

जग के हित में होती, तेरी हर इच्छा माँ ।
कष्ट में ही होती मानव की धैर्य परीक्षा माँ ।।
तेरी करुणा तो, कण-कण में है दिखती ।
अन्तर्मन में जननी, सदा साथ तुम रहती ।।
हृदय लगा लेती शिशु को माँ, जब भी उसने पुकारा ।
माँ, दुख भी तो वरदान तुम्हारा ।।

प्रश्न – शक्तितत्त्व क्या है?

उत्तर – जो निर्विशेष शुद्ध तत्त्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है, उसी को पुंस्त्वदृष्टि से 'चित्' और स्त्रीत्वदृष्टि से 'चिति' कहते हैं। शुद्ध चेतन और शुद्ध चिति-ये एक ही तत्त्व के दो नाम हैं। माया में प्रतिबिम्बित उसी तत्त्व की जब पुरुषरूप से उपासना की जाती है, तब उसे ईश्वर, शिव अथवा भगवान आदि नामों से पुकारते हैं, और जब स्त्रीरूप से उसकी उपासना करते हैं, तो उसी को ईश्वरी, दुर्गा अथवा भगवती कहते हैं – इस प्रकार शिव-गौरी, कृष्ण-राधा, राम-सीता, सारदा-गदाधर तथा विष्णु-लक्ष्मी ये परस्पर अभिन्न ही हैं। इनमें वस्तुतः कुछ भी भेद नहीं है, केवल उपासकों के दृष्टिभेद से ही उनके नाम और रूपों में भेद माना जाता है।

प्रश्न – शक्त्युपासना का अधिकारी कौन है? और उसका अन्तिम फल क्या है?

उत्तर – शक्ति की उपासना प्राय: सिद्धियों की प्राप्ति के लिये की जाती है। आसुरी प्रकृति के पुरुष उसे तामसिक पदार्थों से पूजते हैं, जिसने उन्हें मारण-उच्चाटन आदि आसुरी सिद्धियाँ प्राप्त होती है; तथा दैवी प्रकृति के पुरुष सात्त्विक पदार्थों से, जिससे वे नाना प्रकार की दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार यद्यपि शक्ति के उपासक प्राय: सकाम पुरुष ही होते हैं, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसके निष्काम उपासक होते ही नहीं। भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस देव ऐसे ही निष्काम उपासक थे। ऐसे उपासक तो सब प्रकार की सिद्धियों को ठुकराकर उसी परम पद को प्राप्त होते हैं, जो परमहंसों का गन्तव्य स्थान है। और यही शक्त्युपासना का चरम फल है। श्रीश्रीचण्डी में जिस प्रकार देवी को 'स्वर्गप्रदा' बतलाया है उसी प्रकार उसे 'अपवर्गदा' भी कहा है। यथा – 'स्वर्गापर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तुते।।''

दुर्घटना भी नहीं तोड़ पायी गोल्डी का साहस

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, साहस हम सब में होता है, किन्तु इसे हमें पहचानना होता है। 'साहस ही हमारी पहचान बनाती है' इस कहावत को सच कर दिखाया है पटना की गोल्डी कुमारी ने। उसने थाईलैंड में आयोजित विश्व एबिलिटी स्पोर्टस युवा खेलों में एक स्वर्ण और एक कांस्य पदक जीता और अपनी मेहनत तथा साहस से न केवल अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बनाई, बल्कि दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत भी बनी।

दर्दनाक हादसे के बाद संघर्ष की कहानी : गोल्डी जब केवल १० महीने की थी, तो एक हृदय विदारक घटना में उसकी माँ विभा देवी की ट्रेन हादसे में मौत हो गई और उसी हादसे में गोल्डी का एक हाथ कट गया। अपनी माँ की गोद में घटी इस दुर्घटना के बाद गोल्डी नाना-नानी तथा दादा-दादी के घर पर पली बढ़ी। दोनों परिवारों ने गोल्डी को कभी उसकी दिव्यांगता का अनुभव नहीं होने दिया और न ही माँ की कमी अनुभव होने दी।

कठिन परिस्थितियों में संघर्ष की मिसाल : पटना नालन्दा जिले के बख्तियारपुर थाना के मिसी गाँव निवासी संतोष कुमार यादव की १६ वर्षीय बेटी गोल्डी कुमारी ने १३वीं राष्ट्रीय जूनियर और सब जूनियर पैरा एथलेटिक्स चैंपियनशिप में एक स्वर्ण और दो रजत पदत जीतकर देश का नाम रोशन किया। गोल्डी ने डिस्कस थ्रो में स्वर्ण और जेवलिन थ्रो में कांस्य पदक प्राप्त किया। गोल्डी का यह सफर आसान नहीं था।

शिक्षा और खेल में रुचि : गोल्डी ने नालन्दा जिले के हरनौत स्थित एक निजी स्कूल में पढ़ाई की और वहाँ होनेवाली वार्षिक खेलकूद प्रतियोगिताओं में सामान्य श्रेणी में भाग लिया। वहीं से उसकी खेलों में रुचि बढ़ी और धीरे-धीरे उसने जिला, राज्य, राष्ट्रीय स्तर तक अपनी पहचान बनाई। वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी सफलता का परचम लहरा चुकी है।

प्रारम्भ से ही गोल्डी एक प्रतिभाशाली खिलाड़ी थी और उसके परिवार के सहयोग से गोल्डी को खेलों में आगे बढ़ने का अवसर मिला। वर्तमान में गोल्डी सरकारी सहयोग से कोलकाता स्थित स्पोर्ट्स ऑथोरिटी ऑफ इंडिया (सेंटर ऑफ एक्सीलेंस) में प्रशिक्षण ले रही है।

आगे का लक्ष्य : गोल्डी का सपना है कि वह पैरा ओलंपिक में भारत का प्रतिनिधित्व करे और पदक जीतकर अपने परिवार, गाँव और समाज का नाम रोशन करे। गोल्डी जब भी निराश होती है, तो अपने आप को उत्साहित करने के लिए भजन सुनती है, जिसमें गीता और महाभारत के भी श्लोक-पाठ शामिल होते हैं। वह विशेषकर वृन्दावनवाले हितप्रेमानन्द गोविन्द शरण जी महाराज का प्रवचन सुनती है।

अपनी प्रतिभा और अदम्य साहस के बल पर गोल्डी ने खेल में जो उत्कृष्ट प्रदर्शन किया उसके लिये उसे २६ दिसम्बर, २०२४ को राष्ट्रपति द्रोपदी मुर्मू के हाथों प्रधानमंत्री राष्ट्रीय बाल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। ○○○

आध्यात्मिक साधना शिविर क्यों?

स्वामी सत्यरूपानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे।

आध्यात्मिक साधना शिविर क्यों आवश्यक है? सत्संगी, साधक, भक्त सबको यह बात जाननी चाहिये। जिस प्रकार आप छुट्टियों में पर्यटन के लिए जाते हैं, तो उतने दिनों के लिए अपना घर, अपना व्यवसाय, अपना काम भूल जाते हैं। उसी प्रकार साधना शिविर में रहने तक अन्य सभी चीजें भूलने का प्रयत्न करना चाहिये। आप डॉक्टर हैं, व्यवसायी हैं, शिक्षक हैं, गृहिणी हैं या दूसरा काम करते हैं, इसे भूलकर केवल आप सब साधक-साधिकाएँ हैं, इस भाव का आरोप अपने मन में करें। आज अपने जीवन का सर्वस्व आध्यात्मिक साधना में समर्पित करने का दृढ़ संकल्प लें, इससे आपको बहुत शक्ति मिलेगी।

साधना शिविर में कैसी दिनचर्या आप बितायेंगे? हमारी दिनचर्या भगवान की उपासना से, भगवान के स्मरण से प्रारम्भ होनी चाहिए। सुबह जब भी आप उठें, तो ईश्वर की उपासना करें, प्रत्येक साधक-साधिका, चाहे गृहस्थ हो, वानप्रस्थी हो, संन्यासी हो, उसे अपनी दिनचर्या ईश्वर चिन्तन से प्रारम्भ करनी चाहिये। शिविर में भजन गाते हैं, गुरु-वन्दना आदि स्तोत्र गाते हैं। इसलिए पहले भजन करें। भगवान के शरणागत हों। यह साधक हेतु आवश्यक है। शिविर में तन, मन, बुद्धि की सारी शक्ति को साधना में लगायें। आप साधक-साधिकाएँ परम अनुभूति करना चाहते हैं, यह संकल्प लेकर शिविर में साधना प्रारम्भ करें।

साधक जीवन के लिए कुछ मौलिक आवश्यकताएँ हैं। जैसे मजबूत नींव पर बना भवन सुदृढ़ और दीर्घकालिक होता है। उसी प्रकार साधक जीवन के नींव को समझ लेना चाहिये, वह जितनी दृढ़ होगी, जितनी अच्छी होगी, उतना ही हमारा साधक-जीवन सफल होगा। हम जहाँ, जिस स्थिति में हैं, वहीं से अपनी साधना प्रारम्भ कर दें। जीवन में कुछ परिवर्तन लाने से हम आध्यात्मिक साधक के रूप में प्रतिष्ठित हो जायेंगे।

आध्यात्मिक साधना का प्राण है विचार। हम जिस विचार का पोषण करते हैं, हमारा व्यक्तित्व, हमारा चरित्र उस प्रकार का हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है – 'जो तुम सोचते हो, वही हो जाते हो।' जैसा मनुष्य सोचता, अनुभव करता है, वैसा उसका जीवन हो जाता है। उन्होंने उदाहरण दिया – 'यदि तुम बुद्ध के समान अनुभव कर सको, तो बुद्ध हो जाओगे। यदि ईसा मसीह की तरह अनुभव कर सको, तो ईसा मसीह हो जाओगे।' उसी प्रकार यदि हम कृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और महावीर के समान अनुभव कर सकें, तो कृष्ण, विवेकानन्द और महावीर हो जायेंगे।

इस अनुभूति का रहस्य क्या है? हमारे चरित्र या जीवन का प्राण है विचार। जीवन की सफलता और असफलता विचारों की दृढ़ता पर निर्भर है। सबसे पहली बात हम मनुष्य हैं। हमको मनुष्य योनि मिली है। इसके सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार करना चाहिए। मनुष्य योनि, मनुष्य की देह, भोग योनि नहीं है। मनुष्येतर जितने प्राणी हैं, पशु-पक्षी, देव-गन्धर्व, जितनी योनियाँ हैं, ये सभी भोग-योनियाँ हैं। यहाँ तक कि देव-गन्धर्व योनि में भी साधना सम्भव नहीं है। उस योनि में भी पूर्व जन्मों के पुण्यों के कारण स्वर्ग आदि का सुख मिला है और वह सुख भोगकर मनुष्य फिर से इसी पृथ्वी पर आता है। यदि बहुत जघन्य कर्म किये हों, तो देव योनि से पशु योनि में जाना पड़ेगा। यदि कुछ सत्कर्म शेष हों, तो पुनः मनुष्य योनि मिल सकती है।

मनुष्य की ये योग-योनि है। यह शरीर योग करने के लिए मिला है। इससे आत्मा का परमात्मा से, आत्मा का ब्रह्म से, भक्त का भगवान से योग करना है, मिला देना है। इस मनुष्य जन्म की महत्ता को यदि हम अपने मन में धारण करेंगे, तीव्रता और दृढ़ता से विचार करेंगे, तो जीवन में परिवर्तन आयेगा।

कैसे परिवर्तन आयेगा? आज तक लोगों ने मनुष्य-जीवन

शेष भाग पृष्ठ ४२९ पर

भजन एवं कविता

माँ श्यामा मैं तुम्हें पुकारूँ

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

माँ श्यामा मैं तुम्हें पुकारूँ, अपने उर के अन्तरतम से ।
ज्ञानभक्ति का वर दो मुझको, माँ तुम अपनी ही करुणा से ।।
तुम ही जग की कारणभूता, जगतजननि तुम आदि समय से ।
अँधियारे मेरे जीवन को, करो प्रकाशित स्वयंप्रभा से ।।
तुम ही जगसंहारकारिणी, महाप्रलय होता माँ तुमसे ।
परात्परा माँ ज्ञानदायिनी, सदा परे हो मन-वाणी से ।।
तुम ही हो माँ मुक्तिदायिनी, प्रकट हुई हो ब्रह्मतत्त्व से ।
मेरा भवबन्धन तुम हर लो, कृपामयी मेरे जीवन से ।।

हे प्रेममयी राधे !

अनिल कुमार तिवारी, बिलासपुर

हे प्रेममयी राधे प्रेम रस उड़ेलिये ।
तृषित हृदय तृप्त हो कुछ ऐसा कीजिये ।।
हृदय वृन्दावन हो, कृष्ण-राधा मिलन हो ।
साक्षी मेरा मन हो, पुलकित यह तन हो ।।
ना कुछ और ध्यान रहे, न देह भान रहे ।
यह तन मन्दिर बने, विवेक का पहरा रहे ।।
संसार आनन्द कुटीर हो, मन रसपान करे ।
शेष न कुछ काम रहे, न ही यह विचार बहे ।।
सब कुछ शान्त हो जाये और न जंजाल रहे ।
तेरी ही चाह रहे, कृष्ण का ही ख्याल रहे ।।
हमारा मिलन हो जाये और न बिरह दाह रहे ।
कामना पूरी हो जाये, तेरा ऐसा आशीर्वाद रहे ।।

धारण कर नव अवतार शिवे !

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

हे माँ ! भारत के पौरुष में कुछ और अधिक अंगार भरो ।
धारण कर नव अवतार शिवे ! फिर से धरणी का भार हरो।।

जब-जब धरती पर दानवता का होता है प्राबल्य शिवे,
तब-तब धारण कर रौद्र रूप दिखलाती रण-कौशल्य शिवे!
कर में लेकर के शूल-चक्र फिर दुष्टों का संहार करो,
धारण कर नव अवतार शिवे! फिर से धरणी का भार हरो ।।

तुमने ही चण्ड-मुण्ड रिपुओं को पलक झपकते मारा था,
तुमने ही रक्तबीज दानव को काली बन संहारा था ।
फिर से निज कर में, हे जगदम्बे! खड्ग और कृपाण धरो,
धारण कर नव अवतार शिवे! फिर से धरणी का भार हरो।।

फिर दानवदल नि:शंक मनुजता को देता है त्रास यहाँ,
मानवता थर-थर काँप रही पाकर नव-नव सन्त्रास यहाँ ।
हे जननि! फिर निज पुत्रों के उर में शक्ति बन वास करो,
धारण कर नव अवतार शिवे! फिर से धरणी का भार हरो ।।

सिसक रही भारत माता असुरों के अत्याचारों से,
अपनी गोदी में पलने वाले दुष्टों के व्यवहारों से ।
फिर से दुष्टों के मन में माते! भय का तुम संचार करो,
धारण कर नव अवतार शिवे! फिर से धरणी का भार हरो।।

जिनको भारत माँ पुत्र समझकर पाली करते घात वही,
अब शीश विखण्डित करने की भी करते रहते बात वही।।
ऐसी निशाचरी माया से भारत-भू का तुम त्राण करो,
धारण कर नव अवतार शिवे! फिर से धरणी का भार हरो।।

भारत को डर अब नहीं पड़ोसी देशों के प्रतिकारों से,
डर है तो केवल घर में ही पलने वाले गद्दारों से ।
ऐसे कुपूत-कपटी-जन से भारत माँ का उद्धार करो,
धारण कर नव अवतार शिवे! फिर से धरणी का भार हो ।।

भारत के वीरों में भर दो निर्भयता की वह आग शिवे,
जिनके सम्मुख होते ही रिपुदल जाये रण में भाग शिवे!
अंग-अंग कर दो सुदृढ़ नस-नस में अनल प्रवाह भरो,
धारण कर नव अवतार शिवे! फिर से धरणी का भार हरो।।

अनकहे किन्तु मूल्यवान प्रसंग

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

सब्जी बेचने वाली व आईएएस अधिकारी

उड़ीसा के एक छोटे-से नगर की रहनेवाली पूजा कुमारी, एक निर्धन परिवार से थीं और भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षाओं की तैयारी कर रही थीं। पिता की बीमारी के उपरांत परिवार की आर्थिक स्थिति चरमरा गई। पूजा ने सुबह सब्ज़ी बेचना आरम्भ किया और रात्रि में दीपक की लौ में पढ़ाई की। लोगों ने व्यंग्य किया – 'सब्जी बेच कर आईएएस बनेगी?' उसने मुस्कुराकर उत्तर दिया – 'जब ईमानदारी से सब्जी बेच सकती हूँ, तो देश की सेवा भी कर सकती हूँ।' आज वही पूजा अपने क्षेत्र की जिलाधिकारी हैं।

शिक्षा : परिश्रम और आत्म-सम्मान किसी भी उपहास से अधिक शक्तिशाली होते हैं।

वह अधूरी पेंसिल

कोलकाता के एक विद्यालय का छात्र सुमन, जब शिक्षक से नयी पेंसिल माँगता है, तो शिक्षक कहते हैं – 'अभी नहीं है।'

सुमन उत्तर देता है – 'कोई बात नहीं सर, मुझे तो कूड़ेदान में एक आधी पेंसिल मिल गई थी, उसमें अभी जीवन बाकी है।' वर्षों बाद, वही बालक एक पर्यावरण वैज्ञानिक बना। उसने बताया कि वह पेंसिल ही उसका प्रेरणास्रोत थी – 'टूटी वस्तुएँ भी मूल्यवान हो सकती हैं।'

शिक्षा : छोटे साधन भी बड़ी प्रेरणा दे सकते हैं।

मेट्रो में एक अजनबी

दिल्ली मेट्रो में एक युवा चित्रकार, थका-हारा, असफलताओं से निराश, मेट्रो में बैठा था। एक वृद्ध सज्जन ने उसकी चित्रकला देखी और कहा – 'तुममें प्रतिभा है। संसार भले न देख पाए, तुम मत छोड़ना।' उन्होंने ५०० रुपए दिए और कहा – 'आज अच्छा भोजन कर लेना।' वह ५०० रुपए कलाकार के लिए आशा का दीपक बना। आज वह प्रसिद्ध चित्रकार है। वह नोट उसने फ्रेम कर दीवार पर टांग रखा है – 'धन के लिए नहीं, विश्वास के लिए।'

शिक्षा : कभी-कभी एक वाक्य जीवन की दिशा बदल देता है।

सफलता यदि करुणा के साथ हो, तो वह सच्ची विजय है। अकेले में ईमानदारी रखना ही चरित्र की सच्ची कसौटी है। ऊँचाई पर पहुँच कर दूसरों का हाथ थामना ही सच्चा उत्तराधिकार है।

भारत की जनसंख्या का लगभग ६५ प्रतिशत भाग ३५ वर्ष से कम आयु के युवाओं का है। यह न केवल संख्या में बलवान है, बल्कि ऊर्जा, नवाचार और सम्भावनाओं की एक अथाह सम्पदा भी है। युवा केवल कल के नेता नहीं हैं – वे आज के निर्माता हैं।

चाहे शिक्षा हो, कृषि, उद्यमिता, प्रौद्योगिकी या सामाजिक सेवा – हर क्षेत्र में युवा परिवर्तन की चाबी हैं। आवश्यकता है उन्हें सशक्त करने की और उनके सामर्थ्य को राष्ट्रीय सेवा एवं विकास की दिशा में प्रेरित करने की। युवा राष्ट्र-निर्माण के स्तम्भ और विकास के वाहक हैं।

अन्तिम चिन्तन : इन कथाओं से यह सिद्ध होता है कि सफलता के पथ पर अग्रसर होते हुए यदि मनुष्य जीवन के मूल्यों को न भूले, तो उसकी विजय और भी पवित्र बन जाती है।

आइए कुछ वास्तविक उदाहरणों और कहानियों के माध्यम से देखें कि किस प्रकार युवा बदलाव के अग्रदूत बन सकते हैं।

१. शिक्षा : गाँवों के अन्धेरों में ज्ञान का प्रकाश

बिहार के एक गाँव की २२ वर्षीय रानी ने पटना से स्नातक की पढ़ाई पूरी कर, अपने गाँव लौटकर आम के पेड़ के नीचे बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। उसने किसी से

कोई शुल्क नहीं लिया। कुछ ही समय में वह कक्षा एक छोटा शिक्षण केन्द्र बन गई, जहाँ आज ५० से अधिक छात्र पढ़ते हैं।

अब वह सोलर प्रोजेक्टर से हिन्दी में शैक्षिक वीडियो दिखाकर पढ़ाई को रोचक और व्यावहारिक बनाती हैं।

महत्त्व : रानी ने सरकारी नौकरी की प्रतीक्षा नहीं की। वह स्वयं अपनी बस्ती के विकास की जिम्मेदारी बन गई। उसने अज्ञान और अवसर के बीच सेतु का कार्य किया।

२. कृषि में नवाचार : मिट्टी से बदलाव की कहानी

पंजाब के २६ वर्षीय गुरप्रीत सिंह ने इंजीनियरिंग की पढ़ाई बीच में छोड़कर अपने खेत में आधुनिक तकनीकों का उपयोग करना शुरू किया। उन्होंने ड्रिप इरिगेशन, जैविक खाद का सदुपयोग किया और स्ट्रॉबेरी जैसी विशेष फसलें उगाईं।

आज वे अच्छे मुनाफे कमा रहे हैं और आसपास के किसानों को भी प्रशिक्षित करते हैं।

सीख : युवा कृषि जैसे पारम्परकि क्षेत्रों जैसे कृषि में नवचेतना ला सकते हैं। उन्हें महानगरों में जाकर ही कुछ करना ज़रूरी नहीं - वे अपने गाँव को ही उन्नत बना सकते हैं।

३. उद्यमिताः समस्याओं को अवसर में बदलना

बेंगलुरु के कुछ कॉलेज छात्रों ने देखा कि स्थानीय दुकानदार डिजिटल भुगतान का प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं। उन्होंने एक सरल मोबाइल ऐप बनाया, जो कन्नड़ और अन्य स्थानीय भाषाओं में UPI तथा QR कोड के प्रयोग की जानकारी देता है।

कुछ ही महीनों में सैकड़ों दुकानदार डिजिटल लेन-देन में सक्षम हो गए।

परिणाम : व्यापार बढ़ा, पारदर्शिता आई और डिजिटलीकरण को बल मिला। युवाओं ने प्रतीक्षा नहीं की - वे स्वयं समाधान बन गए।

४. तकनीक और सोशल मीडियाः केवल सेल्फी नहीं, सशक्तिकरण का साधन

असम की अंजलि, एक पत्रकारिता छात्रा ने एक यूट्यूब चैनल शुरू किया जिसमें वह किसानों, बुनकरों और लोक कलाकारों की कहानियाँ साझा करती थी। इन वीडियोस ने लोगों का ध्यान खींचा और अब उन कारीगरों को सीधे आर्डर मिलने लगे हैं।

सन्देश : सोशल मीडिया केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सशक्तिकरण का साधन भी बन सकता है – अपने लिए और दूसरों के लिए भी।

५. सेवा भावना : वे जो बिना वर्दी के नायक बने

कोविड महामारी के दौरान देशभर में हज़ारों युवाओं ने दवाइयाँ, भोजन और ऑक्सीजन पहुँचाने का कार्य किया।

कानपुर के १९ वर्षीय राज और उनके साथियों ने अपनी साइकिलों को मोबाइल मेडिकल यूनिट में बदल दिया और वृद्धाश्रमों में आवश्यक सामग्री पहुँचाई।

उन्होंने दूसरों की सेवा करते हुए स्वयं के स्वास्थ्य की भी परवाह नहीं की।

प्रेरणा : देश सेवा के लिए वर्दी या पद की आवश्यकता नहीं – केवल एक समर्पित हृदय चाहिए।

युवाओं को सशक्त बनाने के लिए आवश्यक

कौशल विकास : सरकार और निजी संस्थानों को युवाओं को तकनीकी और व्यावहारिक प्रशिक्षण देना चाहिए। डॉक्टर और इंजीनियर ही नहीं, कुशल कारीगरों की भी उतनी ही आवश्यकता है।

मार्गदर्शन (मेंटॉरशिप) : सफल व्यक्ति ग्रामीण व शहरी छात्रों का मार्गदर्शन करें।

वित्तीय सहायता : जिनके पास विचार हैं, उनके पास पूँजी नहीं – उन्हें सस्ती दरों पर ऋण और अनुदान दिया जाए।

स्वैच्छिक सेवा का प्रोत्साहन : सेवा कार्य को कॉलेज क्रेडिट या नौकरी में अंक देकर मान्यता दी जाए।

निष्कर्ष : युवाओं की ऊर्जा विद्युत की भाँति है, जो घरों को आलोकित भी कर सकती है और उन्हें जला भी सकती है। उनकी दिशा ही राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करेगी।

हर छोटा प्रयास महत्त्व रखता है – एक बच्चे को पढ़ाना, एक पेड़ लगाना, एक परिवार की मदद करना, एक ईमानदार व्यवसाय शुरू करना – ये सब छोटी बातें नहीं हैं। यह एक शान्त क्रान्ति है।

जैसा कि महात्मा गाँधी ने कहा था, 'स्वयं को खोजने का सर्वोत्तम मार्ग है – स्वयं को दूसरों की सेवा में खो देना।' भारत के युवा केवल भविष्य नहीं हैं – वे वर्तमान हैं। और वे ही उस कलम को थामे हैं, जिससे इस राष्ट्र की कहानी लिखी जाएगी। ○○○

शरत्काल में अनन्तरूपों में दुर्गा-पूजा

दुर्गा-पूजा विशेष

स्वामी ईशानन्द, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

श्रीदुर्गासप्तशती में देवी ने स्वयं कहा है –

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।

तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः।।

सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः।

मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः।।[१]

देवी कहती हैं कि शरद नवरात्रि में आयोजित वार्षिक दुर्गा-पूजा में यदि देवी-माहात्म्य भक्तिपूर्वक श्रवण करें, तो मेरी कृपा से मानव निःसन्देह बाधामुक्त एवं धन-धान्यसम्पन्न हो जायेगा। उपरोक्त श्लोक में देवी ने स्वयं शरद ऋतु के आश्विन मास में शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक होनेवाली दुर्गापूजा को महापूजा बताया है। इस पूजा को नवरात्रि पूजा और शारदोत्सव भी कहा जाता है। शास्त्रों में कहते हैं कि महापूजा – ''चतुःकर्ममयी शुभाः।[२] अर्थात् जिस पूजा में चार भाग होते हैं – महास्नान, पूजा, होम और बलिदान, उसे महापूजा कहा जाता है। शरद ऋतु की दुर्गापूजा में पूजा के ये चार भाग होते हैं। वासन्ती दुर्गापूजा को भी शरद ऋतु की दुर्गापूजा सदृश महापूजा कहा गया है। क्योंकि वसन्त ऋतु में भी देवी की पूजा इसी प्रणाली से की जाती है। शरद और वसन्त की नवरात्रि श्रीभगवान के दो अवतारों श्रीराम और श्रीकृष्ण से जुड़ी हुई है। इससे पूजा का महत्त्व अधिक बढ़ जाता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में यह उल्लिखित है कि वसन्त ऋतु में श्रीकृष्ण ने पहली बार रासमंडल के गोलोक में दुर्गापूजा की थी –

पूरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना।

सम्पूज्य मधुमासे च सम्प्रीते रासमण्डले।।[३]

भगवान कृष्ण द्वारा की जानेवाली इस पूजा को वसन्ती दुर्गापूजा के नाम से जाना जाता है, क्योंकि 'मधुमास' का अर्थ होता है वसन्त काल।

श्रीराम ने रावण के वध के लिए शरत्काल में दुर्गापूजा की थी। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार रावण-वध से पहले, श्रीराम ने ऋषि अगस्त्य के आदेश पर भगवान सूर्य को प्रसन्न करने के लिए 'आदित्य हृदय' स्तव का पाठ किया था। लेकिन कई पुराणों के अनुसार श्रीराम ने दुर्गापूजा की, सूर्य-पूजा नहीं। यदि हम थोड़ा गहराई से सोचें तो देखेंगे कि दुर्गापूजा सूर्यपूजा का ही नामान्तर है। शास्त्रों में देवी दुर्गा के प्रथम नाम का उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक के एक मन्त्र में किया गया है –

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।

दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः।[४]

अर्थात् मैं अग्निवर्णा, तपस्या से प्रकाशित, वैरोचनी, कर्मफलदात्री देवी की शरण लेता हूँ। दुर्गा को 'वैरोचनी' कहा गया है। 'विरोचन' शब्द का एक अर्थ है सूर्य या अग्नि। इसलिए वैरोचनी का अर्थ है सूर्य या अग्नि की पुत्री। तो देवी दुर्गा, सूर्य या अग्नि की पुत्री हैं, अर्थात् एक ही स्वरूप है। इसके अलावा सूर्य को कृषि और वर्षा का देवता भी कहा जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार आदित्य ताप देते हैं और उसी से वर्षा होती है – 'याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति।'[५] पुनः मनु अपनी स्मृति में कहते हैं – आदित्य से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न और अन्न से प्रजा-पालन होता है – आदित्याज्जायते वृष्टिः बृष्टैरन्नं ततः प्रजाः।[६]

हमने देखा कि सूर्य का सम्बन्ध वर्षा और अन्न से है और अन्न से प्रजा का पालन होता है। सूर्य के समान देवी दुर्गा का भी वर्षा, अन्न और प्रजा-पालन से गहरा सम्बन्ध है। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि दुर्गमासुर ने सभी वेदों को अपने नियंत्रण में लेने के लिये ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर सभी यज्ञों को रोक दिया था। वेद लुप्त हो गए थे। वेदों के विलुप्त होने से यज्ञ भी लुप्त हो गये। इसके कारण आकाश मेघरहित हो गया और वर्षा बन्द हो गई। संसार में भुखमरी फैल गयी। इस भुखमरी से मुक्ति पाने के लिए महामाया शताक्षी के रूप में प्रकट हुईं। देवी के दाहिने के दो हाथों में तीर और एक कमल है। अपने बायें हाथों में वे एक धनुष और विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ और फल धारण की हुई हैं। उनके सर्वांग अनन्त नेत्रों से सुशोभित हैं। जीवों के दुख से व्यथित होकर, देवी की अनन्त आँखों से नौ दिनों तक वर्षा होने लगी। देवी की कृपा से पृथ्वी और जीव भुखमरी के प्रकोप से बचा। अनन्त नेत्रों को धारण करनेवाली देवी शताक्षी नाम से प्रसिद्ध हुईं। सन्तानों की भूख मिटाने के लिए अपने हाथों में गृहीत सब्जियों और फलों को वर्षासिक्त खेतों में उगाकर देवी शाकम्भरी नाम से प्रसिद्ध हुईं। दुर्गमासुर का वध करने के बाद उनका नाम दुर्गा हुआ। इस घटना से सिद्ध होता है कि देवी दुर्गा भी सूर्य सदृश शताक्षी के रूप में वर्षा, शाकम्भरी के रूप में कृषि और दुर्गा के रूप में वह विभिन्न दुर्गति से जीवित प्राणियों की रक्षा करती हैं। पुन: देवी दुर्गा के ध्यान में देवी को 'तप्तकंचनवर्णाभा', 'अतसीपुष्पवर्णाभा' कहा जाता है, जो कंचनवर्ण सूर्य की याद दिलाता है। 'गायत्री मन्त्र' सूर्य-पूजा के साधनों में से प्रमुख माना जाता है। गायत्री उपासना में त्रिसन्ध्या वन्दना के समय किये जानेवाले ध्यान के तीन तीन रूप हैं यथा – सुबह ब्रह्माणी, दोपहर में वैष्णवी और शाम को शिवा रूप में उपासना की जाती है। यह जगदम्बा का त्रिविध रूप मात्र है। इसलिये सूर्य-पूजा एक अर्थ में देवी की ही पूजा है। इसलिये हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि रामायण में देवी दुर्गा पूजा की ही परोक्षरूप से पूजा करने की बात कही गई है।

कालिकापुराण, देवी भागवत, बृहद्धर्मपुराण आदि ग्रन्थों में श्रीराम पर अनुग्रह करने और रावण को मारने के लिये ब्रह्मा द्वारा दुर्गा की पूजा का उल्लेख मिलता है –

रामास्यानुग्रहार्थाय रावणस्य वधाय च।
रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा।।
तथास्तु त्यक्तनिद्रा सा नन्दायामाश्विने सिते।
जगाम नगरीं लंकां यत्रासीत् राघवः पुरा।।
निहते रावणे वीरे नवम्यां सकलैः सुरैः।
विशेषपूजां दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः।।[७]

अर्थात् प्रचीनकाल में राम पर कृपा करने और रावण के वध के लिये महादेवी रात्रि के समय ब्रह्मा द्वारा बोधित हुई थीं। उसके बाद नींद त्यागकर वे आश्विन के शुक्ल पक्ष में लंका नगर में राम के शिविर में जा पहुँचती हैं। रावण-वध के बाद सभी देवताओं के साथ ब्रह्माजी दुर्गा की विशेष पूजा करते हैं। देवी स्वयं कहती हैं कि आश्विन मास की कृष्णा नवमी से शुक्लाष्टमी पन्द्रह दिनों तक मेरा पूजा महोत्सव है। तेरह दिन बिल्व वृक्ष में मेरी पूजा करके सप्तमी को घर में लाकर दो दिन घर में मेरी पूजा करें –

एवं पंचदशाऽहनि मम पूजा महोत्सवः।
अथ त्रयोदशाऽहनि बिल्वे मां पूजयेत् कृती।।
सप्तम्यां गृहमानीय पूजयेन्मां दिनद्वयम्।[८]

इसके अतिरिक्त देवीभागवत में कहा गया है कि वनवास-काल में किष्किन्धा में सीता के विरह से दुखी श्रीराम को नारदजी दुर्गा-पूजा नवरात्र व्रत करने का परामर्श देते हैं। उस पूजा में नारद स्वयं आचार्य बनते हैं –

व्रतं कुरुष्व श्रद्धावानाश्विने मासि साम्प्रतम्।।
नवरात्रोपवासञ्च भगवत्याः प्रपूजनम्।
सर्वसिद्धिकरं राम जपहोमविधानतः।।[९]

इसी पुराण में नारद ने कहा है कि यह नवरात्रि व्रत पहले विष्णु, महादेव, ब्रह्मा और इन्द्र द्वारा आयोजित किया गया था। बाद में बृहस्पति, भृगु, विश्वामित्र सहित अन्यों ने भी नवरात्रि व्रत का आयोजन किया। इस व्रत के परिणाम स्वरूप इन्द्र ने बृत्र को, शिव ने त्रिपुरासुर को और हरि ने मधुदैत्य को मारा था। अर्थात् श्रीराम द्वारा देवी पूजा के पूर्व ही नवरात्रि में देवी पूजा प्रचलित थी।

विभिन्न पुराणों में है कि देवी दुर्गा ब्रह्मा की प्रार्थना से प्रसन्न होकर कहती हैं कि आज कृष्णा नवमी में कुम्भकर्ण का विनाश होगा। लक्ष्मण के अस्त्र से त्रयोदशी में अतिकाय मरेगा। रावण चतुर्दशी में युद्ध के लिये चलेगा। लक्ष्मण अमावस्या की रात इन्द्रजीत को मार देंगे। प्रतिपदा पर

मकराक्ष, द्वादशी पर अन्य देवांतक आदि राक्षस मरेगा। उसके बाद सप्तमी में मैं श्रीरामचन्द्र की बाण में प्रविष्ट हो जाऊँगी। अष्टमी में राम और रावण का युद्ध होगा। अष्टमी-नवमी के सन्धि-क्षण में रावण के दस सिर काटे जायेंगे। वे सिर बार-बार जुड़ेंगे, किन्तु पुनः काटे जायेंगे। शुक्ल नवमी पर शाम के समय श्रीराम के हाथों रावण का अन्त होगा। दशमी को सब लोग विजयोत्सव मनाएँगे।'[१०] इस प्रकार विभिन्न पुराणों के आलोक में हमने देखा कि रावण-वध के पूर्व दुर्गा की कृपा प्राप्त करने के लिये दुर्गा पूजा का उल्लेख शास्त्र में है।

हमने देखा कि देवी स्वयं शारदीय पूजा को महापूजा कहती हैं। क्योंकि शरद ऋतु में देवी की विभिन्न रूपों में विभिन्न लीलाएँ सम्पन्न हुई थीं, ऐसा पुराणों में उल्लेख है। 'कालिका पुराण' में वर्णन है – देवी महामाया आद्याशक्ति देवताओं की प्रार्थना पर प्रबुद्ध होकर आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को, महालया के पूर्व दिन कात्यायन ऋषि के आश्रम में प्रकट होती हैं। इसके बाद शुक्ल सप्तमी को देवताओं के तेज से देवी मूर्ति ग्रहण करती हैं। अष्टमी में देवताओं के विभिन्न अस्त्र और अलंकार देकर देवी को सजाया जाता है। नवमी में देवी देवताओं द्वारा अनेक पूजोपचारों से पूजित होकर महिषासुर का वध करती हैं। दशमी को देवगण आनन्दोत्सव मनाते हैं और पूजा के बाद देवी विसर्जित होती हैं और अन्तर्धान हो जाती हैं।

देवी पुराण में कहा गया है कि देवी शरद ऋतु में विन्ध्याचल में प्रकट होकर आश्विन की नवमी तिथि में घोरासुर का वध करती हैं। इस अवसर पर देवी-पूजा का जो विधान है, वह इन्द्र ने ब्रह्मा से पूछा था। उनके उत्तर में ब्रह्मा ने जो विधान दिया था, वही देवी पुराण में वर्णित दुर्गा पूजा के रूप में प्रचलित है। इस पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि दक्ष-यज्ञ में सती के देह-त्याग के बाद भगवती ने आश्विन की शुक्ल अष्टमी में महाभयंकर भद्रकाली रूप में प्रकट होकर करोड़ों योगिनियों के साथ मिलकर दक्ष-यज्ञ का विनाश किया।

इसीलिये दुर्गापूजा की महाष्टमी तिथि में देवी की उनकी शक्तिमूर्ति और करोड़ों योगिनी-समन्वित रूप में गन्ध, पुष्प, चन्दन, नैवेद्य आदि के सहयोग से विशेष पूजा की जाती है। दक्ष-यज्ञ के विनाश के लिये ही वे प्रकट हुई थीं, इसलिये उन्हें दक्षयज्ञ-विनाशिनी कहा जाता है – **ओम् दक्षयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै योगिनीकोटिपरिवृतायै भद्रकाल्यै ह्रीं ओम् दुर्गायै नमः**। घोरासुर का वध करने के लिये उन्हें महाघोरा और भद्रकाली कहा जाता है। उनका यह विविध अवतार शरत् काल में हुआ था। इसलिए उनकी पूजा का विशेष-काल शरत् काल है।

शारदीय दुर्गा-पूजा के माहात्म्य के बारे में कहा जाता है कि अष्टमी की पूजा साधक को सभी महाविपत्तियों से बचाती है, इसलिये इसका नाम महाष्टमी है। अष्टमी-नवमी सन्धिक्षण की पूजा एक वर्ष भर की पूजा के समान फलदायी होती है। महासम्पत्ति देने के कारण नवमी को महानवमी कहा जाता है। यदि कोई कार्य शारदीय दशमी में आरम्भ किया जाए, तो वह सफल होता है। इसमें सफलता मिलती है। इसलिये इसे विजया दशमी कहते हैं।

भारत के विभिन्न प्रान्तों में शारदीय नवरात्रि को विभिन्न ढंग से मनाया जाता है। कहीं नवदुर्गा पूजा के माध्यम से, कहीं दशभुजा दुर्गा के रूप में, तो कहीं अन्य किसी रूप में। नवरात्रि के समय देवी-उपासना की इस विविधता और व्यापकता ने इस पूजा को महापूजा में रूपान्तरित कर दिया है। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। जैसे भारत के दक्षिणी भाग में आचार्य शंकर द्वारा स्थापित श्रृंगेरी मठ में नवरात्रि धूमधाम से मनाई जाती है। अमावस्या के दिन देवी शारदा के अभिषेक से इस उत्सव का प्रारम्भ होता है। इस दिन माँ शारदा को जगत्-पराशक्ति के रूप में सजाया जाता है। प्रतिदिन देवी शारदा के विशेष पूजा के अतिरिक्त वहाँ ललिता-सहस्रनाम, कुंकुम-अर्चना, श्रीदुर्गासप्तशती, विभिन्न वेद, रामायण, देवी भागवत, भागवत आदि शास्त्र ग्रन्थों का पाठ किया जाता है। श्रीसूक्त, भुवनेश्वरी, दुर्गामन्त्र सहित विभिन्न मन्त्रों का जाप, श्रीचक्र की नवावरण पूजा, सुवासिनी पूजा और कुमारिका पूजा भी प्रतिदिन की जाती है। इन नौ दिनों में माँ शारदाम्बा के विभिन्न प्रकार के स्वरूप होते हैं। जैसे ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, इन्द्राणी, वीणा शारदा, मोहिनी, राजराजेश्वरी, चामुण्डा, गजलक्ष्मी। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन देवी शारदाम्बा का रथोत्सव भी मनाया जाता है।

भारत के एक अन्य प्रमुख तीर्थ-क्षेत्र पुरी में जगन्नाथ मन्दिर के अन्तर्गत बिमला मन्दिर में एक विशेष पद्धति से शारदीय दुर्गापूजा का आयोजन होता है। यहाँ शारदीय उत्सव में देवी बिमला की सोलह दिन की विशेष पूजा होती है। प्रतिदिन देवी की पूजा विभिन्न रूपों में होती है।

पहले और अन्तिम चार दिनों में देवी का सामान्य श्रृंगार होता है। दूसरे दिन भुवनेश्वरी, तीसरे दिन वनदुर्गा, चौथे दिन राजराजेश्वरी, पाँचवें दिन उग्रतारा, छठे दिन मातंगी, सातवें दिन बगला, अठवें दिन नारायणी, नौवें दिन सिंहवाहिनी, दशवें दिन जयदुर्गा, ग्यारहवें दिन में शूलिनीदुर्गा और बारहवीं में हरचण्डी के रूप में होती है। सप्तमी, अष्टमी और नवमी की मध्य रात्रि में देवी की रहस्य पूजा होती है और बकरा-बलिदान भी होता है। शाक्ताचार के इन दिनों में मछली भोग भी दिया जाता है। उन दिनों जगन्नाथ मन्दिर से उनके प्रतिनिधि के रूप में दुर्गा माधव नाम की एक मूर्ति को देवी की दक्षिण दिशा में देवी के भैरव के रूप में स्थापित किया जाता है। दुर्गा-पूजा बंगाल का प्रमुख उत्सव है। बंगदेश में केवल स्मार्तों के बीच ही नहीं, गौड़ीय वैष्णवों के बीच भी दुर्गा-पूजा का प्रचलन है, जिसका आरम्भ स्वयं नित्यानन्द प्रभु ने गंगा तट पर खड़दह में अपने घर में किया था। उल्लेखनीय है कि श्रीचैतन्य देव ने १५१४ में शरत् काल में कटक शहर में बालू बाजार में विनोद बिहारी देव-मण्डप में घटपूजा के द्वारा दुर्गा-पूजा प्रारम्भ की थी।[११]

श्रीनित्यानन्द की दुर्गा-पूजा की कुछ विशेषताएँ हैं। सिंह यहाँ घोटकाकृति में है। बंगाल की परम्परा के अनुसार माँ के दोनों ओर लक्ष्मी, सरस्वती के स्थान पर जया-विजया होती हैं। माँ दुर्गा यहाँ कात्यायनी नाम से पूजी जाती हैं। केवल श्रीनित्यानन्द के घर में नहीं, बंगाल के कई घरों में आज भी इस परम्परा के अनुसार दुर्गापूजा होती है। पूर्वी भारत में देवी अपने परिवार सहित दशभुजा के रूप में पूजित होती हैं किन्तु किसी न किसी स्वरूप में देवी पूजा का अधिकार सभी को है। इसलिये इस पूजा के अधिकारी सभी लोग हैं –

ब्राह्मणैः क्षत्रियैः वैश्यैः शुद्धैरन्यैश्च सेवकैः। एवं नानाम्लेच्छगणैः पूज्यते सर्वदस्युभिः।।

पूजा की गहनता, व्यापकता, विभिन्न समुदायों में इसकी स्वीकृति, वैचित्र्य और विविधता से परिपूर्ण यह दुर्गा पूजा अनन्य है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीदुर्गासप्तशती, अ.१२, श्लोक १२,१३ **२.** हिन्दू-कृत्तित्व का तिथित्व पृष्ठ ३६९ **३.** ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रकृति खण्ड ६६/२ **४.** दुर्गासूक्तम् **५.** १०/६३/१६ **६.** मनुस्मृति ३/७६ **७.** हिंदूदेर देवदेवी : उद्भव ओ क्रमविकास तृतीय पर्व -२२३) **८.** वही, २२४ **९.** देवीभागवत ३/३०/१८-१९ **१०.** श्रीश्रीदुर्गा तत्त्व औ काहिनीते ७३ **११.** दुर्गा पूजा : श्रीचैतन्य संस्कृति में शक्ति साधना, 'निबोधत' सितम्बर-अक्तूबर।

उन्हें इसी जीवन में पा लेना होगा – स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

जिन्होंने भगवान की शरण ली है, उनकी कृपा पायी है, वे कभी भी गलत रास्ते पर नहीं जाते। ऐसे लोगों के क्रिया-कलाप, बातचीत और व्यवहार आदि से देश और समाज का मंगल होता है। श्रीरामकृष्ण कहते थे, ''खूँटे को छू लेने से फिर चोर नहीं बनता। पहले खूँटे को पकड़ो।'' अर्थात् मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है भगवत्प्राप्ति। पहले उन्हें जान लेना होगा, उनके चरणकमलों में भक्ति-विश्वास दृढ़ करना होगा, फिर जो भी दूसरे काम करने हों, करो। उन्हें जान लेने से स्वयं के हृदय में शान्ति मिलती है और दूसरों को भी शान्ति दी जा सकती है।

श्रीरामकृष्ण कहते थे, ''भक्त का हृदय भगवान का बैठकखाना है।'' यदि हम अपना परिचय 'उनका भक्त', 'उनका सेवक', 'उनका दास' कहकर देना चाहते हैं, तो हमें शुद्ध और पवित्र होना होगा। शुद्ध हृदय ही उनका आसन है। अशुद्ध हृदय से वे बहुत दूर रहते हैं। जब हमारा हृदय काँच के समान स्वच्छ और निर्मल होगा, जब उस पर तनिक भी दाग नहीं रहेगा, तभी वह उनका बैठकखाना बनेगा और तभी हम यह कहने के अधिकारी होंगे कि हम उनके भक्त हैं, पुत्र हैं, सेवक और आश्रित हैं।

शुद्ध मन में उनका प्रतिबिम्ब बहुत साफ पड़ता है। जैसे दर्पण में धूल लगी रहने से मूख ठीक से देखा नहीं जा सकता, वैसे ही अशुद्ध मन में भगवान का प्रतिबिम्ब ठीक से नहीं पड़ता। तुम लोगों की उम्र अभी कम है, मन में मैल नहीं पड़ा है, अभी से हृदय में उनके लिए आसन बिछाकर रखो, जिससे वहाँ दूसरी चीज को स्थान न मिले। जीवन शुद्ध और पवित्र हुए बिना उन्हें जाना नहीं जा सकता। शुद्ध और पवित्र होओ। उन्हें इसी जीवन में पा लेना होगा।

श्रीरामकृष्ण-गीता (५०)

(दशम् अध्याय १०/१)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

दशमोऽध्यायः

साधकवर्गविभागः

श्रीरामकृष्ण उवाच

साधका द्विविधा दृष्टाः जगत्यस्मिन् स्वभावतः।
वानरशावकाश्चापि विडालशावकास्तथा।।१।।

– श्रीरामकृष्ण ने कहा, इस जगत में स्वभावत: दो प्रकार के लोग देखे जाते हैं। जैसे बन्दर का बच्चा और बिल्ली का बच्चा।।१।।*

वानरशावकास्त्वग्रे तेषां दधति मातरम्।
माता भ्राम्यति तान् नीत्वा यत्र तत्र यथेप्सितम्।।२।।

– बन्दर का बच्चा पहले अपनी माँ को पकड़ता है, उसके बाद उसकी माँ उसे लेकर जहाँ इच्छा हो वहाँ लेकर घुमती रहती है।

एकत्र केवलं स्थित्वा दीनं मातुरपेक्षया।
ततो कुर्वन्ति मेनादं मार्जारशावका भृशम्।।३।।

– बिल्ली का बच्चा केवल एक स्थान पर बैठकर कातरता से 'म्याऊँ म्याऊँ' बोलते हुये माँ की प्रतिक्षा करता रहता है।

नयति जननी चापि स्वेच्छया सुतवत्सला।
सुतान् शिरोधिमाकृष्य रक्षति यत्रकुत्रचित्।।४।।

– उसकी वात्सल्यमयी माँ अपने बच्चों को जब जहाँ इच्छा हो, अपने कन्धे पर लेकर चली जाती है।

ज्ञानिनः कर्मिनस्तद्वन्मर्कटशावका इव।
पुरुषकारयोगेन चेष्टन्ते लब्धमीश्वरम्।।५।।

– वैसे ही ज्ञानी या कर्मयोगी साधक बन्दर के बच्चे के सदृश पुरुषार्थ के द्वारा ईश्वर-प्राप्ति करने का प्रयास करते हैं।

ईशः कर्तेति सर्वेषां ज्ञात्वा विडालवत्सवत्।
निश्चिन्ता आसते भक्तास्तत्पादकृतनिर्भराः।।६।।

– ईश्वर ही कर्ता हैं, ऐसा मानकर भक्त-साधक उनके चरणों में बिल्ली के बच्चे के समान निर्भर होकर निश्चिन्त बैठे रहते हैं।

स्याद् यथा हि पुमानेकः पितृव्यो वा पितेति वा।
कस्यचिन्मातुलो वेति सम्बन्धी श्वशुरोऽपि वा।।७।।
एकोऽपि सन् पुमानत्र पृथग्विधैर्नवैः सह।
सम्पर्कस्य पृथग्भेदात् सम्पर्की स पृथक् पृथक्।।८।।

– एक व्यक्ति किसी का पिता, किसी का चाचा, किसी का दादा किसी का मामा, किसी का ससुर और किसी का सम्बन्धी होता है। यहाँ व्यक्ति एक होने पर भी भिन्न-भिन्न लोगों के साथ उसका भिन्न सम्बन्ध होने के कारण अनेक प्रकार का सम्बन्ध-भेद है।

भजन्ते सच्चिदानन्दं भावैर्नानाविधैर्नवाः।
तं शान्तदास्य-सख्यत्ववात्सल्य-मधुरैस्तथा।।९।।

– वैसे ही उसी एक सच्चिदानन्द के भक्त शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर आदि अनेक भावों से उपासना करते हैं।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।
तमेव ये प्रपद्यन्ते आपद्यन्ते तमेव हि।।१०।।

– जिसकी जैसी भावना होती है, उसका वैसा ही लाभ होता है। जो उन्हें चाहता है, वह उनको ही प्राप्त होता है।

ततो वा अपि कांक्षन्ति तस्यैश्वर्याणि येऽर्थिनः।
शश्वत्ते तानि काम्यानि प्राप्नुवन्ति न संशयः।।११।।

– जो अपने ऐश्वर्य की कामना करते हैं, वे सभी अपने इच्छित वस्तु को अवश्य प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

निर्बोधश्चातिमूढ़ो यः प्रविश्य राजमन्दिरम्।
राजानं तुच्छवस्तूनि कुष्माण्डादि याचते।।१२।।

– राजभवन में जाकर यदि कोई राजा से भिक्षा में लौकी-कुम्हड़ा आदि माँगता है, तो वह बहुत बड़ा मूर्ख है। **(क्रमशः)**

* (श्री सम्प्रदाय अर्थात् आचार्य रामानुज आदि के वैष्णव सम्प्रदाय में प्रपत्ति अर्थात् शरणागति के सम्बन्ध में दो प्रकार का वर्णन है। पहला बन्दर के बच्चे का और दूसरा बिल्ली के बच्चे का)

पाञ्चरात्र शास्त्रों में दुर्गा

दुर्गा-पूजा विशेष

डॉ. अरूपम सान्याल, शोध-योजना सदस्य, टीका लेखन परियोजना,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

सुप्राचीन काल से सनातन धर्म की बहुत समुदायें हमारी भारत-भूमि में उत्पन्न हुए। इन समुदायों के भिन्न-भिन्न आचार, दर्शन, विचार इत्यादि सनातन धर्म के वैविध्य को दर्शाते हैं। उपास्यदेवों की भिन्नता के अनुसार मुख्यत: इन समुदायों में भेद हैं। सनातन धर्म में शाक्त, शैव, सौर, कौमार, गाणपत्य, वैष्णव इत्यादि अनेक प्रकार के सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं। इनमें भी विविध भेद दिखाई देते हैं। इन सम्प्रदायों में वैष्णव सम्प्रदाय अन्यतम है। वर्तमान में सम्भवत: जनसंख्या के अनुसार वैष्णव समुदाय की संख्या ही अधिक है। वैष्णव सम्प्रदाय की विविध शाखा-उपशाखायें विविध कालखण्ड में उत्पन्न हुईं। विभिन्न सिद्ध महात्मा इन सम्प्रदायों के प्रवर्तक हैं। श्रीरामानन्द, श्रीरामानुज, श्रीकृष्णचैतन्य, निम्बार्क, वल्लभ राधावल्लभ इत्यादि अनेक सिद्ध पुरुषों ने अपनी तप:शक्ति इत्यादि के द्वारा जनता का कल्याण किया है। वैष्णवों के दर्शनशास्त्र भी विविध प्रकार के हैं। वेदान्त शास्त्रों की अनेक प्रकार की वैष्णव व्याख्याएँ हमें उपलब्ध होती हैं। अत: दार्शनिक दृष्टिकोण से भी यह सम्प्रदाय भारतीय दर्शनशास्त्र के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वैष्णवों के सबसे प्राचीन शास्त्र जिसमें वैष्णवों के दार्शनिक और कर्मकाण्डीय विचार-विमर्श देखा जाता है, वह है पाञ्चरात्र शास्त्र। इस पाञ्चरात्र शास्त्र का महत्त्व इससे स्पष्ट होता है कि ब्रह्मसूत्र के उत्पत्त्यसम्भवाधिकरण में पाञ्चरात्र मत के विषय में वर्णन किया गया है। पूज्यपाद आदि शङ्कराचार्य ने भी अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में पाञ्चरात्र मत की चर्चा की है। यह वैष्णव तन्त्रशास्त्र है। आगमशास्त्रों के नाम से भी ये शास्त्र जाने जाते हैं। रामानुज मत के अनुयायी प्रधानत: इन शास्त्रों को मानते हैं। पाञ्चरात्र वैष्णव परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इस सम्प्रदाय के अस्तित्व का प्रमाण हमें ईसा की प्रथम शताब्दी से ही पुरातात्त्विक अवशेषों से ज्ञात होता है। पाञ्चरात्र शास्त्रों में नारायण ही मुख्य उपास्य हैं। नारायण और उनके अंशावतार, उनकी प्रतिमा इत्यादि ही पाञ्चरात्रों के प्रधान एवं एकमात्र आराध्य हैं। एक समय यद्यपि पूरे भारत में ही पाञ्चरात्र मत के अनुयायी थे, परन्तु वर्तमान काल में दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य स्थित श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में इस मत के अनुयायी देखे जाते हैं। परन्तु पाञ्चरात्र दर्शन के द्वारा भारत के सभी वैष्णव सम्प्रदाय प्रभावित हुए हैं। पाञ्चरात्र मत के अनेक प्रकार के भेद भी हैं। एकान्ती

सम्प्रदाय तो विष्णु और उनके कुल-देवता से भिन्न किसी अन्य देवता को पूजना तो दूर, उनका नामोच्चारण भी नहीं करते। यह आश्चर्यकर है! वास्तव में पाञ्चरात्र में कहा गया है कि पाञ्चरात्रों के एकमात्र उपास्य नारायण ही हैं और प्रपत्ति अर्थात् शरणागति के द्वारा ही मोक्ष-प्राप्ति सम्भव है। इसी प्रकार अन्यत्र भी देखा जाता है कि शाक्तों में शक्ति को परम उपास्य माना गया है।

हमारा विवेच्य विषय पाञ्चरात्र शास्त्रों में देवी दुर्गा हैं। यदि नारायण से इतर कोई और उपास्य नहीं हैं, तो दुर्गा देवी की उपासना कैसे होती है? उसके उत्तर में कहा जाता है कि पाञ्चरात्र शास्त्रों में दुर्गा देवी क्षेत्ररक्षक के रूप में पूजित होती हैं। देवी दुर्गा मुख्यत: द्वारपालिका भी हैं। शङ्ख, चक्र, वर और अभयधारिणी महिष के कटे सिर के ऊपर खड़ी हुई देवी की प्रतिमा दक्षिण भारत के वैष्णव मन्दिरों में देखने को मिलती है। इन्हें कोई-कोई विष्णु-दुर्गा भी कहते हैं।

इस प्रसंग में एक बात अवश्य ध्यान देने योग्य है। यद्यपि वैष्णवों में इष्टनिष्ठा चरम है। वे अपने इष्ट के अलावा किसी अन्य की पूजा नहीं करते, परन्तु इष्ट के परिवार-पार्षद के रूप में अनेक तथाकथित अवैष्णव देवताओं की पूजा वे करते हैं। दक्षिण भारत में देवी को विष्णु की बहन भी माना जाता है। शैवों में विष्णु और शक्ति अभेद स्वरूप हैं, ऐसी मान्यता है। अत: अभेदत्व के विषय में जनमानस में अवधारणा है।

परन्तु एकान्ती वैष्णवों में जो नारायण के प्रति ऐकान्तिकी निष्ठा है, उससे वे अन्य देवताओं की उपासना नहीं करते। वस्तुत: यह एकान्ती सम्प्रदाय अभी वहाँ प्रबल हैं। वर्तमान वैष्णव शास्त्रों में यद्यपि मुख्यत: नारायण और उनके पार्षदों का वर्णन मिलता है, परन्तु प्राचीन कुछ वैष्णव-शास्त्रों की मूर्ति-प्रतिष्ठा इत्यादि भाग में विष्णु-पार्षदों के अलावा शैव और शाक्त देवी-देवों के मूर्ति-निर्माण का प्रसंग हम देख सकते हैं। उससे प्रमाणित होता है कि एकान्ती मत से भिन्न अन्य मतानुयायियों में इन देवी-देवताओं की पूजा होती थी। हयशीर्षपाञ्चरात्र शास्त्र नामक वैष्णव आगमशास्त्र के तीसवें अध्याय में देवी गौरी और शक्ति के स्वरूपों का वर्णन किया गया है। उस अध्याय में दशभुजा महिषासुरमर्दिनी चण्डिका की प्रतिमा का भी वर्णन है। न केवल यही वर्तमान में पूर्वभारत में जो वैष्णवीय मत में दुर्गापूजा इत्यादि होती है, वहाँ सामिष भोजन देवी को अर्पित नहीं किया जाता, परन्तु पाञ्चरात्र शास्त्र जैसे वैष्णवपारम्य और वैष्णवाचार के विषय में प्रमाणभूत शास्त्रों में इस विषय में निषेध नहीं दिखता।

परम संहिता और सनत्कुमार संहिता नामक पाञ्चरात्र आगमशास्त्रीय ग्रन्थों में तिथियाग का वर्णन मिलता है। वहाँ किस तिथि में कौन से देवता की पूजा करनी चाहिए, उसकी एक सूची प्राप्त होती है। उनमें देवी दुर्गा की पूजा नवमी तिथि को रक्त पुष्प से और आमिष वस्तुओं से करने का विधान है। ग्रह-निग्रह और शत्रु-निग्रह नामक कर्मों में भी नारायणी भगवती महामाया की पूजा की जाती थी। यह तो स्पष्ट है कि पाञ्चरात्र मत अत्यन्त प्राचीन है। गुप्तकाल में राजाओं के द्वारा भी पाञ्चरात्र मत की प्रतिष्ठा अनुमेय है। अनेक पाञ्चरात्र मतानुयायी आचार्य गुप्तकाल में राजा महाराजाओं के गुरु-रूप में प्रतिष्ठित थे। इसीलिये पाञ्चरात्र मत में क्षत्रियों की आराध्या शक्तिस्वरूपिणी भगवती दुर्गा की रक्त पुष्प इत्यादि क्षत्रियतेज से परिपूर्ण ओजस्वी रूप से पूजित होने का विधान है। पाञ्चरात्र संहिताओं में देवी का वर्णन रक्षणकारिणी शक्ति के रूप में किया गया है।

सनत्कुमार संहिता में दुर्गायाग का वर्णन प्राप्त होता है। दुर्गालय अर्थात् देवी दुर्गा के लिए पृथक मन्दिर का निर्माण भी इस संहिता में कहा गया है। ग्रामों में भी दुर्गा-मंदिर-निर्माण का उल्लेख मिलता है। कहा गया है कि देवी दुर्गा की प्रतिमा को शंख, चक्र, शूल, पाश, अङ्कुश और धनुर्बाण से युक्त अष्टभुजी श्यामवर्ण स्वरूप में निर्मित करना चाहिए। यहाँ देवी को जया, विजया, पूर्ण और पुष्कला समेत दर्शाने का निर्देश है और देवी आर्या के नाम से परिचित हैं। इस से हमें महाभारत में अर्जुनकृत देवी स्तोत्र में आर्या नाम से उनके सम्बोधन का स्मरण होता है। आर्या बहुत प्राचीन काल से ही देवी का एक नाम है, जो सम्मान के अर्थ में प्रयुक्त है। गुप्तकाल तक जब पाञ्चरात्र वैष्णव आगमों का आधिपत्य पूरे उत्तर भारत में था, तब भी यह देखने को मिलता है। देवी को योगनिद्रा नाम से भी सम्बोधित किया गया है और उनका श्यामवर्ण योगनिद्रा स्वरूप का ही द्योतक है। हरिवंश में प्रथम हम नारायण के साथ योगनिद्रा का सम्बन्ध देखते हैं। कृष्ण कथा के प्रारम्भ से ही देवी के साथ भगवान विष्णु का योग देखते हैं। वराहमिहिर के बृहत्संहिता में भी हलीचक्री और एकानंशा के रूप में देवी का वर्णन किया गया है। इन तीन देवताओं की पूजा हम आज जगन्नाथपुरी में देख सकते हैं। पाञ्चरात्र शास्त्रों में एकानंशा के भी सामिषभोजन, रक्त पुष्प इत्यादि शाक्ताचार से पूजा के अनेक प्रसङ्ग हमें प्राप्त होते हैं।

पद्मोद्भव संहिता में नृसिंह और देवी दुर्गा को एक ही साथ एकमन्त्र के द्वारा ग्रहबाधा निवारण के लिए आवाहन किया गया है। सनत्कुमार संहिता में अपराजिता विद्या जो वैष्णवी और दुर्गा दोनों प्रकार की हैं, ऐसा कहा गया है। यह मन्त्र-विद्या वस्तुत: नारायण मन्त्रोपासक के लिए ही है, जो आपदाओं से रक्षा करती हैं। वैष्णवशास्त्रों में मूलत: पद्म इत्यादि रत्नत्रय नाम से प्रसिद्ध संहिताएँ हैं, उनमें देवी का वर्णन नहीं मिलता है। वैष्णव पाञ्चरात्र शास्त्रों में देवी दुर्गा की प्रतिमा, उनके लिए पृथक मन्दिर के निर्देश हमें मिलते हैं, परन्तु मूल उपास्य मूर्ति वह नहीं है। परन्तु विष्णु-भगिनी आर्या दुर्गा भगवती वैष्णव जनों के द्वारा सङ्कटनिवारिणी शत्रुनाशिनी के रूप में परिचित थीं, यह नि:सन्देह कहा जा सकता है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि भारतीय सम्प्रदायों में यद्यपि विभिन्नता है, परन्तु इन आचार और विभिन्नताओं में भी एकसूत्रता हमें देखने को मिलती है, जो हमारे सनातन धर्म की एकता को सूचित करता है। परस्पर अत्यन्त भिन्न आचार होते हुए भी एक-दूसरे के आचार का सम्मान और सहिष्णुतापूर्वक उसके दार्शनिक विचारों को आस्था से आत्मसात् करना, हमारे भारतीय धर्म-समुदायों की उदारता और परमसहिष्णुता का प्रमाण है। यही हमारी विरासत है।

OOO

श्रीरामकृष्ण-स्तुति–५

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(तर्ज – भए प्रगट कृपाला, दीनदयाला...)

करि शुद्धाचारा, रहो संसारा, ज्यों अमीर-घर दासी ।
स्वामी-घर कामा, करि निष्कामा, कभी न रहै उदासी ।।
बालक पुचकारै, गोद-दुलारे, करै विविध परिहासी।
जानै अन्तरतम, सुत-घर नहिं मम, सुत मम कुटिया-वासी ।।४६।।

जब तक स्वामी मम, रहहिं कृपा-नम, तब तक यह घर मेरा ।
जब देंहिं हटाई, सकऊँ न आई, जदपि निकट मम डेरा ।।
दासी अस जानी, रहै अमानी, करै प्रेम बिनु-संगा ।
इमि करि जग-वासा, त्यागि दुराशा, हे नर करो सत्संगा।।४७।।

बदचलन जो नारी, सहि बहु गारी, पर नर-संग करै यारी ।
करि सब गृह-काजा, गत भय-लाजा, मन रख छवि मनहारी ।।
सहि व्यंग्य अनेका, चिन्तन एका, तन-घर-याद बिसारी।
इमि रहि संसारी, हे नर-नारी! भजो हरि-पद अविकारी ।।४८।।

यह जग ज्यों कटहल, काटत ही फल, रस चिपके दोउ हाथा ।
कर लेत लगाई, करि चतुराई, काटहु उर धरि नाथा ।
मलि दोउ कर-कमला, भक्ति-सुतेला, जग-कटहल गहो हाथा ।
रहि जगत्-असंगा, करि सत्संगा, भक्ति करो प्रभुनाथा ।।४९।।

जग-उपवन आई, तर्क भुलाई, खाओ भक्ति-फल भाई ।
करि तर्क-विचारा, क्यों पथहारा, रहो मनुज-तनु पाई ।।
मत त्रासहु चित्ता, शाखा-पत्ता-सुमन हिसाब लगाई ।
तजि भव-जंजाला, भक्ति-रसाला, खाओ मुदित, मन लाई ।।५०।।

बहु पक्षी-पापा, मन परितापा, देहिं वृक्ष-तनु आई ।
नित सायं-प्रातः, पुलकितगातः, करो करतल-ध्वनि भाई।।
सुनि ताली-कीर्तन, उड़हिं वृक्ष-तन , सब पक्षी-अघमाई ।
तब हृदय-प्रदेशा, चिन्मय-वेशा, प्रकट होंहिं प्रभु आई ।।५१।।

कलिकाल-प्रतापा, सब जग व्यापा, देह-बुद्धि नहिं जाई ।
रहै प्राण अन्नगत, बुद्धि विषय-रत, दिव्य स्वरूप भुलाई।।
लघु जीवन-भोगा, जप-तप-योगा, करत बहुत कठिनाई ।
प्रभु-अमृतबानी, सुनि सुख खानी, भक्ति करो हे भाई ।।५२।।

कलि भक्तिप्रधाना, दयानिधाना, नारद मुनि उपदेशा ।
नामामृत-पाना, कीर्तन-गाना, मिलहिं भक्त-हृदयेशा ।।
सत्-वचन समाना, तप नहिं आना, नर तनु धरि कलिकाला ।
हे प्रभु करुणाकर! देइ भक्ति-वर, जीवन करो निहाला ।।५३।।

नश्वर संसारा, परम असारा, तदपि दिखै सुखरूपा ।
जग इन्द्रियगोचर, ब्रह्म अगोचर मानव सहज स्वरूपा ।।
जब होय विरागा, हरि अनुरागा, दिखे जगत भवकूपा ।
निज घर-परिवारा, सब संसारा, दिखै सर्व भयरूपा ।।५४।।

जब भगवत्प्रीति, भक्ति प्रतीती, रहै आइ उर छाई ।
जग कर नहिं ध्याना, मन उन्माना, रहै प्रभु-पद सिमटाई।।
अति प्रिय निज देहा, होय विदेहा, करि हरि-पद सेवकाई ।
तन कर नहिं ध्याना, गत मद-माना, कर्म घटत ही जाई ।।५५।।

जब तक मैं-मेरा, करि उर डेरा, करै मनुष्य दुखारी ।
मन होइ जगलीना, विषयाधीना, हरिपद विमुख, विकारी ।।
तब तक सब माया, करै उपाया, करि जीवहिं संसारी ।
करि नित सत्संगा, भक्ति-तरंगा जीव होय अविकारी ।।५६।।

धरि मनुज शरीरा, जो पर-पीरा, करै सो जीवन हारा ।
हरिपद सुखधामा, करि विश्रामा, मनुज होय भव पारा ।।
जो अस उपदेशा, सत्य दिनेशा सत्चित् सुखमय रूपा ।
सो प्रभु सुखराशी, हरि अविनाशी, उर छवि बसै अनूपा।।५७।।

जय जय जगदीशा, धन्य गिरीशा, करि निज भक्त बनायो ।
दे निज विश्वासा, करि अघ नाशा, कृपा अमित बरसाओ।।
निज पतितपावनी, भक्तिदायिनी, करुणा जगत दिखायो ।।
सुन अधम-उधारन, यश जगतारन, नाथ शरण मैं आयो ।।५८।।

जब तक अभिमाना, ईश्वर-ज्ञाना, नहिं पावै संसारी ।
नित तजि मद-माना, हरि-गुणगाना, करि नर होय सुखारी ।।
जो अस उपदेशा, त्यागी-वेशा, अघ-अवगुण-भ्रम-हारी ।
सो करहु अनुग्रह, चिद्घनविग्रह, भव-त्रिताप-भय-हारी ।।५९।।

जग कंचन-कामा, नहिं विश्रामा, पावै कोउ यह लोका ।
हरिभक्ति पावनी, शान्तिदायिनी, तुरत हरै सब शोका ।।
अस मन अनुमाना, हरिगुणगाना , लीन रहै जब प्रानी ।
अन्तर-सुख भासै, मतिमल-नाशै, करि भवबन्धन हानी ।।६०।।

प्रश्नोपनिषद् (६३)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड – पुरुष में विलीन हो जाता है

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः।।५।।

अन्वयार्थ – स: (वह दृष्टान्त यह है) – यथा (जैसे), समुद्रायणा: (समुद्र की ओर) स्यन्दमाना: (प्रवाहित हो रही), इमा नद्य: (ये नदियाँ), समुद्रम् (समुद्र को) प्राप्य (पाकर), अस्तम् गच्छन्ति (अपने स्वरूप को विलीन कर देती हैं), तासाम् (उन नदियों के) नामरूपे (नाम और रूप) भिद्येते (मिट जाते हैं); (तब उन्हें), समुद्र इति (समुद्र) एवम् प्रोच्यते (कहा जाता है), एवम् (इसी प्रकार), अस्य परिद्रष्टु: (इस द्रष्टा ज्ञानी पुरुष की) इमा: (ये) पुरुषायणा: (पुरुष में विलीन) षोडश कला: (सोलह कलाएँ), पुरुषम् प्राप्य (पुरुष को पाकर) अस्तम् गच्छन्ति (उसमें विलीन हो जाती हैं), आसाम् नामरूपे च (और इन कलाओं के नाम-रूप), भिद्येते (समाप्त हो जाते हैं); (तब उन्हें) पुरुष इति एवम् (केवल 'पुरुष' – ऐसा), प्रोच्यते (कहा जाता है); स: एष: (इसे जाननेवाला वह ज्ञानी), अकल: (निष्कल अर्थात् अखण्ड) (तथा) अमृत: भवति (अमर हो जाता है), तत् एष: श्लोक: (इसी विषय में यह श्लोक है)।।५।।

भावार्थ – वह दृष्टान्त इस प्रकार है, जैसे समुद्र की ओर प्रवाहित हो रहीं ये नदियाँ, समुद्र को पाकर अपने स्वरूप को उसी में विलीन कर देती हैं, उन नदियों के नाम तथा रूप मिट जाते हैं; तब उन्हें समुद्र ही कहा जाता है; वैसे ही, इस द्रष्टा ज्ञानी व्यक्ति की ये सोलह कलाएँ, पुरुष को पाकर उसी में विलीन हो जाती हैं और इन कलाओं के नाम-रूप समाप्त हो जाते हैं; केवल 'पुरुष' ऐसा कहा जाता है। इसे जाननेवाला वह ज्ञानी निष्कल (पूर्ण) तथा अमर हो जाता है, इसी विषय में यह श्लोक है ।।५।।

भाष्य – स दृष्टान्तो; यथा लोके इमा नद्यः स्यन्दमानाः स्रवन्त्यः समुद्रायणाः, समुद्रो-अयनं गतिः आत्मभावः यासां ताः समुद्र-अयणाः समुद्रं प्राप्य-उपगम्य अस्तं नाम-रूप-तिरस्कारं गच्छन्ति।

भाष्यार्थ – वह दृष्टान्त इस प्रकार है, जैसे संसार में निरन्तर प्रवाहित हो रही ये नदियाँ, जिनका समुद्र ही अयन अर्थात् लक्ष्य तथा आत्मभाव (स्वरूप) है, समुद्र को प्राप्त होकर अस्त, विलीन हो जाती हैं अर्थात् अपने भिन्न नाम-रूप को खो देती हैं।

भाष्य – तासां च-अस्तं गतानां भिद्येते विनश्यतो नाम-रूपे गङ्गा-यमुना-इत्यादि-लक्षणे। तद्-अभेदे समुद्र इति एवं प्रोच्यते तद्-वस्तु-उदक-लक्षणम्।

भाष्यार्थ – उन विलीन हुई नदियों के गंगा, यमुना आदि विशिष्ट नाम-रूप नष्ट हो जाते हैं। और उससे अभिन्न हो जाने के कारण उनका जलमय पदार्थ भी 'समुद्र' ही कहा जाता है। **(क्रमशः)**

सर्वदा प्रार्थनाशील होना। प्रभु को निरन्तर अपने हृदय की बातें बताते रहना। एकमात्र वे ही अपने हैं... हृदय में यही भाव दृढ़ हो जाने पर फिर कोई भय-चिन्ता नहीं रह जाती। क्रमशः वे सब कुछ समझा देते हैं।

सर्वदा स्मरण-मनन करने का प्रयास करना तथा भीतर ही भीतर प्रार्थना करते रहना कि उनके श्रीचरणों में मन लगे। ऐसा होने पर वे कृपा करेंगे। जीवन में सुख-दुख तो लगा ही रहता है, यदि उनके श्रीचरणों में भक्ति हो तभी मानव-जन्म सार्थक है, अन्यथा यह कर्मभोग मात्र है।

– स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज

दुर्गा-पूजा विशेष

शक्ति

स्वामी सत्कृतानन्द

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर, छ.ग.

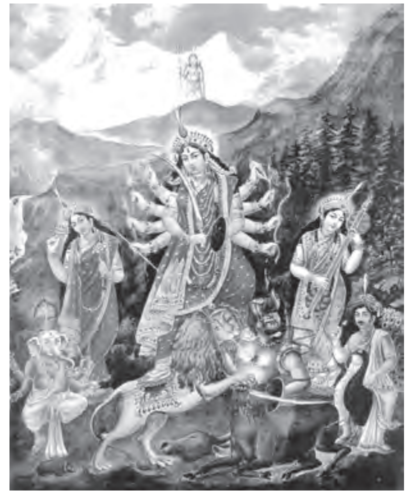

केनोपनिषद के तृतीय खण्ड में एवं चतुर्थ खण्ड के प्रथमांश में एक रोचक आख्यान हमें मिलता है। एक बार देवताओं और असुरों में भीषण युद्ध हुआ। उस भयंकर लड़ाई में देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी। जब वे अपने-अपने पराक्रम के बारे में सोच रहे थे कि कैसे उन्होंने असुरों को हरा दिया, तब अचानक ही उन्होंने एक विचित्र मूर्ति को अपने सम्मुख प्रकट होते देखा। इन्द्र देव ने अग्नि देव को उन अदृष्टपूर्व मूर्ति का परिचय जानने का आदेश दिया।

अग्नि देव जैसे ही उनके निकट पहुँचे, मूर्ति ने उन्हीं से उनका परिचय पूछा। अपना परिचय पूछे जाने पर अग्निदेव ने गर्व से कहा – मैं अग्नि देव हूँ। पुनः प्रश्न हुआ – आपकी क्षमता क्या है? आप क्या कर सकते हैं? अग्निदेव ने उत्तर दिया – मैं इस पृथ्वी का सब कुछ जलाकर भस्म कर सकता हूँ। यह सुनते ही अनोखे आगन्तुक ने उनके सामने एक तिनका रख दिया और उसको जलाकर भस्म करने के लिए कहा।

देखते ही देखते मृदु–तीव्र सुतीव्र होकर आग जल उठी, मानो प्रलय काल की कालाग्नि जल उठी, पर वह छोटा-सा तिनका ज्यों का त्यों रह गया। अग्नि देव कुछ भी न कह पाये और लौट गए। इन्द्र देव ने इस बार वायु देवता को भेजा। उनसे आगन्तुक ने पहले का प्रश्न ही पूछा। जैसे ही वायुदेवता ने अपनी क्षमता बताई, तो उनके सामने उसी तिनके को रखकर उसे उड़ाकर दिखाने की आज्ञा दी। वायु देवता ने बहुत प्रयास किया, आँधी-तूफान चला, पर वे उस छोटे-से तिनके को न हिला सके।

अग्नि और वायु के जैसे प्रबल पराक्रमी देवता जिनके सामने नतमस्तक हो लौट आयें, उन्हें सामान्य नहीं जानकर इन्द्रदेव, स्वयं चलकर उस अद्भुत आगन्तुक मूर्ति के सामने जब पहुँचे, तो मानो इन्द्रदेव की अवहेलना करने के लिए ही वे अदृश्य हो गये।

पर इन्द्र मन में उनका परिचय पाने की ठान चुके थे। अतः वे वहीं खड़े रहे और उस अद्भुत मूर्ति के पुनः प्रकट होने की प्रतीक्षा करते रहे। इसे इन्द्र का श्रद्धाभाव जानकर उनके सामने अब एक अपूर्व शोभन नारी-मूर्ति प्रकट हुई। उन मातृमूर्ति ने इन्द्र से कहा – जिन अदृष्टपूर्व मूर्ति का परिचय जानने के लिए इन्द्र उत्सुक है, वह तो परम ब्रह्म का ही रूप था, जिनकी शक्ति से ही देवताओं ने लड़कर असुरों पर विजय प्राप्त की। इन मातृरूपा को उमा-हैमवती कहा गया है। ये ही ब्रह्मविद्या हैं, ब्रह्म से अभिन्न ब्रह्मशक्ति हैं। जगद्धात्री, दुर्गा, काली आदि कई नाम और रूप इनके ही हैं।

उपासकों के कल्याण और जगत् की रक्षा हेतु स्वयं निराकार होते हुए भी स्वयं की इच्छा से माता पराशक्ति भिन्न-भिन्न नाम-रूप धारण कर लेती हैं। दुर्गा सप्तशती के प्राधानिक रहस्य के अनुसार सृष्टि से पहले एकमात्र परमेश्वरी महालक्ष्मी ही थीं। उन्होंने देवी महाकाली एवं देवी महासरस्वती का सृजन किया। फिर इन तीनों देवियों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश और उनकी शक्तियों सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती जी को प्रकट किया। ब्रह्माजी और सरस्वती माता इस ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं। विष्णुजी और माँ लक्ष्मी मिलकर इसका पोषण करते हैं और अन्त में भगवान् शंकर जी अपनी शक्ति माता पार्वती के साथ इस सृष्टि का संहार करते हैं। माता महाशक्ति से ही ब्रह्मादिक सभी देवताओं की उत्पत्ति होने के कारण उनको 'सर्वेश्वरेश्वरी' कहा गया है। दुर्गा सप्तशती के मन्त्रों में (प्रथम अध्याय मन्त्र ७५-७७) में कहा गया है कि शक्तिरूपिणी देवी ही (त्रिदेवों के माध्यम से) सारे जगत का सृजन करती हैं, पोषण करती हैं एवं अन्त में जगत को अपने में समेट लेती हैं। अपने द्वारा रचित इस सृष्टि के कण-कण में माता का वास है। एक प्रसिद्ध

श्लोक में कहा गया है –

भूतानि दुर्गा भुवनानि दुर्गा,
स्त्रियो नरश्चापि पशुश्च दुर्गा।
यद्यद्धि दृश्यं खलु सैव दुर्गा,
दुर्गास्वरूपादपरं न किञ्चित्।''

इस समस्त सृष्टि में देवी दुर्गा ही हैं, सभी प्राणियों में, प्रत्येक नर में भी माँ दुर्गा का वास है। हमारी आँखें जो भी देख पाती हैं, स्वरूपत: वे माता दुर्गा ही हैं और उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। देवी 'विश्वात्मिका' हैं। इस पूरे विश्व के अन्तर और बाहर समाई हुई हैं। पर अचिंत्य उनकी महिमा, वे इस विश्व से परे भी हैं – **तत् अतीव विश्वम्।** अर्थात् परिभाषा के अनुसार माता पराशक्ति एक ही साथ अलौकिक और अचल-अन्तर्यामी (transcendent and immanent) है।

एक ही ब्रह्मशक्ति का विचित्र प्रकाश है! एक ही शक्ति है शुभ और अशुभ, जिनके दो भिन्नतर प्रकाश दिखाई पड़ते हैं। दुर्गासप्तती के प्रथम अध्याय के ७७-७८ श्लोकों में यह आश्चर्य तत्त्व कहा गया है – जहाँ इस महाशक्ति को एक ही साथ 'महाविद्या', महामेधा, महास्मृति अर्थात् मोक्षप्रदायिनी ब्रह्मविद्या और उसकी धारणा-शक्ति एवं स्मृति-शक्ति कहने के साथ ही साथ 'महामाया' एवं महामोहा' विमुग्ध करके संसार के जन्म-मरण रूप चक्र में बार-बार घुमाने वाली भी कहा गया है। आगे वही श्लोक कहता है 'महादेवी' महासुरी'! – हे माता ! आप ही देवताओं की शक्ति हैं और आप ही दुष्ट असुरों की भी शक्ति बनी हैं !

माता आदिशक्ति ही मनुष्य को मोह-जाल में फँसा कर संसार में बाँध कर रखती है और प्रसन्न होने पर हाथ पकड़कर मुक्ति की राह पर ले जाते हुए मुक्त कर देती हैं।[१] जिस रूप में माता बाँधने वाली होती हैं, वह उनकी अविद्या शक्ति है और जिस रूप में माता मुक्ति दिलानेवाली होती हैं, वह उनकी विद्या प्रदायिनी शक्ति है।

मनुष्य भले ही सोचे, वह स्वाधीन इच्छा से चलता है। परन्तु सत्य तो यह है कि भगवती पराशक्ति ही सबको चलाती हैं। ऋग्वेद के देवी सूक्त का चौथा मन्त्र ब्रह्मशक्ति का उद्घोष है – **'मया सोऽअन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति यईं श्रृणोत्युक्तम्** – शक्तिमयी देवी की शक्ति से ही मनुष्य खा सकते हैं, देख सकते हैं, सुन सकते हैं और तो और, श्वास ले पाते हैं।

अत एव तत्त्वनिष्ठ संयत और निर्दोषचित्त मुमुक्षुगण मोक्ष-प्राप्ति के लिए ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी भगवती का चिन्तन और तपस्या करते हैं।[२] यह बड़ा ही दुखद है कि साधारण लोग भांग, गांजा और मदिरा के सेवन को ही शक्ति-उपासना समझते हैं। परन्तु सत्य तो यह है कि उस परमशक्ति को न केवल नारियों में अपितु सर्वभूत में अवस्थित जानकर शुद्ध अन्त:करण से भगवती की उपासना करने से साधक को दृढ़ निश्चय होता है – **सा अम्बा मम गतिः सफले अफले वा।।** ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. दुर्गा सप्तशती प्रथम अध्याय ५४-५८ एवं एकादश अध्याय ३१ मन्त्र) **२.** दुर्गा सप्तशती के चतुर्थ अध्याय का नवम मन्त्र.

कविता

जय जय भवानी ब्रह्माणी

डॉ. राजनाथ त्रिपाठी, वाराणसी

जब जब इस धराधाम पर महादैत्य करते उत्पात ।
तब तब माता विविध रूप धरि करती उनका संघात ।।
जब विष्णु शंकर बाबा ब्रह्मा इन्द्र वायु अग्नि हार ।
सबको नरवश करि राक्षस फैलाते रहते अत्याचार ।।
तब करें भवानी ही कल्यानी करें सदा दुष्ट संहार ।
कभी कालिका कभी नारसिंही कभी चण्डी का ले अवतार।।
करें रक्षा सब जीव जगत की तब तब करि करि हुंकार ।
कभी खड्ग खप्पर लेकर और नंगी ले तलवार ।।
धनुष बाण फरसा चमचम घन घन करि नाद घण्टा ।
घोर शब्द करि समरांगण में कभी बजाती हैं डंका ।।
रक्तबीज हों शुम्भ-निशुम्भ चिक्षुर अरु महिष अपार ।
खेल खेलाकर सिंहवाहिनी करती रहती हैं संहार ।।
माता सम कोई दूसर नाहीं देखो और करो विचार ।
जो करत गुणगान निरन्तर सो पावे सर्वस्व सार ।।
जो जाने जतन करि दुर्गा माई की महिमा ।
निशदिन बढ़त प्रताप भक्त ज्ञान गुण गरिमा ।।
जय जय भवानी ब्रह्माणी रुद्राणी इन्द्राणी रानी ।
जय महेश मुखचन्द्र चकोरी जय जय हो हे महारानी ।।

गीतातत्त्व-चिन्तन

चौदहवाँ अध्याय (१४/२)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १४वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

सत्त्वगुण जीवन का चरम लक्ष्य नहीं

श्रीरामकृष्ण एक कहानी कहा करते थे, जिसकी चर्चा यहाँ पर बड़ी समीचीन होगी। एक बटोही अपने गाँव की ओर जा रहा था। रास्ते में एक जंगल पड़ता था। सूर्यास्त के पहले वह उस जंगली रास्ते को पार करना चाहता था। पर वह रास्ता भटक गया। उसको डर लगने लगा। इसी बीच उसने देखा कि तीन बड़े मोटे-मोटे लोग हाथ में सोंटा लिए उसके समीप आ रहे हैं और बटोही से कहते हैं कि जितनी भी रकम है, उनके सामने रख दी जाए। उस बटोही ने चुपचाप सबकुछ निकालकर उन लोगों के सामने रख दिया। तब एक डाकू ने कहा कि इसको यदि हम छोड़ देंगे, तो यह जाकर पुलिस को खबर कर देगा। इसीलिए इसको मार दिया जाए। उसने कटार निकाला और उसे मारने ही वाला था कि दूसरे डाकुओं ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा कि नाहक क्यों अपना हाथ इसके खून से रंगते हो। हमने तो इसका सबकुछ छीन ही लिया है। रही पुलिस में रिपार्ट करने की बात, तो हम इसके हाथ-पैर बाँधकर इसे यहीं डालकर चले जाते हैं। भूख-प्यास से यहीं पर वह मर ही जाएगा। इस तरह उन लोगों ने उसे बाँध दिया और वहीं फेंक दिया और

अपनी राह ली। यह बटोही बँधा हुआ पड़ा काँप रहा था। उसका बहुत बुरा हाल था। इतने में उसने देखा कि कोई आ रहा है और समीप आकर उस पर झुक रहा है। डर के मारे वह चीख पड़ा, तो उस झुके हुए व्यक्ति ने उससे कहा कि डरने की कोई बात नहीं है। मैं तुम्हारे बन्धन छुड़ाने के लिए ही आया हूँ। बटोही ने पूछा, 'तुम कौन हो भाई?' उस आगन्तुक ने कहा कि वह तीसरा डाकू है। जब मेरे दो दोस्त तुम्हें बाँध रहे थे, उस समय मुझे ठीक नहीं लग रहा था। पर उनके सामने मैं कुछ कह नहीं पाया। इसीलिए मैंने सोचा कि बाद में आकर मैं तुम्हें बन्धनमुक्त कर दूँगा। उस तीसरे डाकू ने उसे खोलकर उससे कहा कि तुम रास्ता

भटक गए हो। आओ, मैं तुम्हें राह दिखा दूँ। इस तरह वह तीसरा डाकू उस बटोही की मदद करता है और उसे जंगल से निकाल देता है और एक रोशनी दिखाकर कहता है कि वह जो रोशनी तुम देख रहे हो न, बस, वहीं तुम्हारा गाँव है। बटोही उसके पैरों पर गिर पड़ता है और कहता है कि भाई, तुमने इतनी कृपा की, मेरे प्राण बचा लिए, तो अब जरा और चलकर मेरे गाँव तक भी चलो। मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकूँ। डाकू ने कहा कि नहीं, बस, यही मेरी सीमा है। मैं जंगल के बाहर नहीं निकल सकता क्योंकि पुलिस मुझे पकड़ लेगी। जाने का आदेश नहीं है। तुम जाओ, वह रहा तुम्हारा गन्तव्य स्थान। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – यह बटोही जीव है और यह संसार अरण्य है। बटोही-जीव निकला और संसार-अरण्य में भटक गया। तीन डाकू आकर हमला बोलते हैं। ये डाकू हैं – तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण। तमोगुणी डाकू कहता है बटोही को मार दो। रजोगुण कहता है – इसे मारते क्यों हो? इसे बाँधकर रख दो न! इस प्रकार रजोगुण और तमोगुण इस जीव को बाँध देते हैं। सत्त्वगुण आता है और कहता है कि तुम बन्धन में बहुत बँध चुके, आओ, मैं तुम्हारे बन्धन काट देता हूँ। वह बन्धन-मुक्त कर देता है।

यह जीव सत्त्वगुण के चरणों पर गिरकर कहता है – तुमने इतना बड़ा उपकार किया। अब मैं तो जा रहा हूँ, प्रभु के पास, वही मेरा लक्ष्य है। सत्त्वगुण संसार-अरण्य में भटके हुए जीव को रास्ता दिखा देता है। जीव सत्त्वगुण से कहता है कि तुम भी वहाँ चलो न! सत्त्वगुण कहता है कि संसार ही मेरी सीमा है। इसको मैं पार नहीं कर सकता हूँ। इसीलिए तुम अकेले ही चले जाओ। इस प्रकार सत्त्वगुण का भी साथ छोड़ना पड़ता है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि वह बड़ी ऊँची अवस्था है। जब हम साधना के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ जाते हैं तब वह अवस्था सधती है। यह रहा इस अध्याय का परिचय। ऐसे ये तीन गुण आते हैं और मनुष्य को बाँध लेते हैं। पर सत्त्वगुण कैसा है? वह जीव को रास्ता दिखाता है।

जीवन में त्रिगुणों का सन्तुलन आवश्यक

मनुष्य के भीतर ये तीनों गुण विद्यमान रहते हैं और उसकी हर प्रवृत्ति इन गुणों से संचालित होती है। ऐसा कोई इस पृथ्वी पर नहीं है, जिसके भीतर ये तीनों गुण न हों। हर व्यक्ति और प्राणी के भीतर ये तीनों गुण हैं। अब किसी में किसी गुण की प्रबलता होती है। तीनों ही गुणों की आवश्यकता होती है। तमोगुण भी चाहिए। इस गुण के अभाव में मनुष्य को नींद ही नहीं आएगी। यह तो हम देखते ही हैं कि कितने ही लोग नींद न आने से छटपटाते रहते हैं, नींद आने की गोलियाँ खाते हैं। नींद क्यों नहीं आती? मन बड़ा चंचल होता है। रजोगुण अत्यन्त प्रबल हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि इन तीनों गुणों को ठीक समय पर आना चाहिए। तभी मनुष्य का जीवन सन्तुलित रहता है। तमोगुण से ही हमें नींद आती है और फलस्वरूप विश्राम मिलता है। रजोगुण से क्रिया होती है और सत्त्वगुण से ज्ञान प्राप्त होता है। हममें सुख और आनन्द की अनुभूति होती है। इस प्रकार मनुष्य को तो तीनों ही चाहिए। पर तीनों को उपयुक्त समय पर आना अनिवार्य है, तभी उनकी सार्थकता सिद्ध होती है। यदि समय पर न आएँ, तो जीवन असन्तुलित हो जाता है। उदाहरणार्थ जिस समय हम पढ़ रहे हों या भगवान का चिन्तन कर रहे हों, उस समय सत्त्वगुण रहे, तो अति उत्तम होता है। बुद्धि बड़ी कुशाग्र रहती है। जो हम पढ़ते हैं, वह जल्दी से समझ में आ जाता है। तमोगुण का आना बिस्तर पर लेटते समय ही उपयुक्त होता है, अन्यथा नींद ही न आए। जैसे आप प्रवचन में बैठे हुए हैं, इस समय सत्त्वगुण का प्रबल होना आवश्यक है। इस समय तमोगुण आ जाए, तो आप झूमने लगेंगे। जिसके लिए आप आए थे, वह हस्तगत नहीं होता। इस तरह हम देखेंगे कि हर गुण की आवश्यकता है, बशर्ते वह समयानुकूल हो। यदि ऐसा न हो, तो जीवन असन्तुलित हो जाता है। उसी को हम कहते हैं – रोगग्रस्त। हम रोगी कब होते हैं? जिस समय ये गुण अपने क्रम से नहीं आते हैं। जिस समय इन गुणों को आना चाहिए, उस समय वे नहीं आते, अन्य गुण आ जाता है। तब हमारे जीवन में रोग की सृष्टि हो जाती है। यहाँ पर यही बताया गया है कि कैसे हम इन गुणों की उपासना या साधना कर सकते हैं। इस भूमिका से आपको इस अध्याय को समझने में सहायता मिलेगी। इस अध्याय का पहला श्लोक है –

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।।१।।

श्रीभगवान उवाच (श्रीभगवान बोले) परम् उत्तमम् ज्ञानानां (उस परम ज्ञानों में सर्वोत्तम) ज्ञानं भूय: प्रवक्ष्यामि (ज्ञान को फिर कहूँगा) यत् ज्ञात्वा सर्वे मुनय: (जिसको जानकर सब मुनिजन) इत: पराम् सिद्धिम् गता: (इस संसार से मुक्त हो परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं)।

– ''श्रीभगवान बोले – ज्ञानों में सर्वोत्तम उस परम ज्ञान को मैं पुन: कहूँगा, जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त हो परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं।''

भगवान कहते हैं – मैं तुझसे फिर से कहता हूँ। क्या कहता हूँ? **ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्** – ज्ञानों में जो उत्तम ज्ञान है, परम ज्ञान है, उसे मैं फिर से समझाकर कहता हूँ। जिसको जानकर **परं सिद्धिम् इतो गताः** - इतो गता: अर्थात् इस संसार को छोड़कर वे गये, तो वे परम सिद्धि को प्राप्त हो गये। भगवान फिर से क्यों कहते हैं? क्योंकि भगवान इस ज्ञान के विषय में पहले भी बता चुके हैं कि कैसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इस ज्ञान से दोनों जाने जाते हैं। वे कहते हैं कि यह ज्ञानों का भी उत्तम ज्ञान है। अर्थात् ज्ञान तो बहुत हैं। ज्ञान की कोई सीमा तो नहीं है। तरह-तरह का ज्ञान होता है। पर इन विभिन्न ज्ञानों में जो सबसे उत्तम ज्ञान है, वह मैं तेरे प्रति कहता हूँ, जिसको जानकर सारे मुनि, सारे चिन्तक, मननशील, ये सभी सबसे बड़ी सिद्धि को प्राप्त

कर लेते हैं, जिससे बड़ी और कोई सिद्धि नहीं होती। गीता में अन्यत्र भी कहा गया है कि जिसको पाने के बाद यह आने-जाने का क्रम ही भंग हो जाता है – **यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः** – उससे बढ़कर लाभ और कोई नहीं है। नारद और सनत्कुमार के संवाद को आपने सुना होगा। नारद के मन में बड़ा विषाद था। वे अशान्ति को दूर करने के लिए चेष्टाशील रहे, अनेक स्थानों में गए, पर कोई उपाय हाथ नहीं लगा। एक ने कहा कि आप अपने बड़े भाई के पास जाइए न! सनत्कुमारजी तो परम ज्ञानी हैं। अब ये दोनों मानस-पुत्र हैं। देवर्षि नारद भी ब्रह्माजी के मानसपुत्र हैं। इसीलिए नारदजी सनत्कुमारजी के पास गए। नारद ने जाकर उनसे कहा कि आप मुझे शिक्षा दीजिए। अब सनत्कुमारजी मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि नारदजी भी बड़े ज्ञानी थे। सनत्कुमारजी ने सोचा शायद नारदजी मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं। सनत्कुमार ने सोचा, अब क्या करना चाहिए? तब उन्हें एक उपाय सूझा। नारद से उन्होंने कहा कि मैं तुम्हें किसकी शिक्षा दूँ? तुम तो बड़े पण्डित हो, ज्ञानी हो, बहुत-कुछ जानते हो। तो चतुराई यह थी, वे नारद से कहते हैं – **येन त्वं वेत्थ तेन मा उपसीदत कथं ते ऊर्ध्वं वक्ष्यामि?** – तू जितना जानता है, उसे पहले मुझे बता दे और जो तू नहीं जानता होगा, उसकी शिक्षा मैं तुझे दे दूँगा। उन्होंने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि सनत्कुमार ने उपदेश दिया और नारद ने कह दिया कि ये तो मैं जानता ही हूँ। तब तो समय और शक्ति दोनों व्यर्थ चले जाएँगे। इसीलिए चतुराई की कि जो तुम जानते हो, वह पहले बता दो। नारद ने एक बड़ी सूची रख दी। नारद ने बताया कि वे क्या-क्या जानते हैं? **ऋग्वेदं भगवोऽध्येभिः यजुर्वेदं सामवेदमार्थवं चतुर्थम् इतिहासपुराणं पंचमम् वेदानां वेदं पित्र्यँ राशिं दैव निधिं वाकोवाक्मेकायनम् देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवज्ञविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि** – ये सब मैंने पढ़ा है, भगवन्। अब जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसका स्पर्श नारद ने नहीं किया हो। वे सबकुछ जानते हैं। चारों वेदों को पढ़ा है। पाँचवा वेद अर्थात् दो इतिहास और अठारह पुराण। इन्हें भी उन्होंने पढ़ा है। फिर वेदों का वेद व्याकरण-शास्त्र, इसे देवर्षि नारद जानते हैं। पितृतर्पण क्रिया भी वे जानते हैं। गणित और नीतिविद्या भी जानते हैं। अर्थशास्त्र के ज्ञाता हैं। क्षत्र अर्थात् अस्त्र-शस्त्र की विद्या और नक्षत्र विद्या के भी जानकार हैं। अब सनत्कुमार ने पूछा भाई, तुम्हें क्या अज्ञात है, जिसको सीखने के लिए तुम मेरे पास आए हो। तुम तो सबकुछ जानते हो। तब नारद ने कहा कि भगवन्, **मन्त्र हि देवः अस्मि न आत्मनि असंशो जानि** – मैं मन्त्रों को जानता हूँ, शब्दराशि को जानता हूँ। ये जो विद्याएँ मैंने कहीं, उन विद्याओं के सारे मन्त्र मुझे कण्ठस्थ हैं। पर मैं आत्मा को नहीं जानता। अपने आपको नहीं जानता। **श्रुतं हि एवमेव भगवद् ऋषिभ्यः तरति शोकं आत्मवृत्तिभिः** – मैंने आप जैसे महानुभावों से सुना है कि जो अपने आपको जान लेता है, वह समस्त शोक को पार कर लेता है। **तन्मा भगवान शोकस्य पारं तारयेत्** – भगवन्, आप मुझ शोक में पड़े हुए को शोक के पार ले चलिए। तब सनत्कुमार ने वह विद्या दी, जिसको हम आत्मविद्या कहकर पुकारते हैं। वही है **ज्ञानमुत्तमं परम्** – परम ज्ञान। वहाँ पर सनत्कुमार ने नारद को समझाया कि **वाचारम्भणं विकारं नामधेयं** - यह शब्दारम्भ केवल नाम ही तुम जानते हो। **मृत्तिका इत्येव सत्यं** - यह तुम नहीं जान पा रहे हो। मिट्टी की कितनी ही चीजें बनती हैं – मिट्टी की गाड़ी, मिट्टी का घोड़ा, मिट्टी का घर, मिट्टी का सिपाही और न जाने कितनी ही चीजें। पर जानकार हम किसको कहेंगे? वह कहलाएगा, जो मिट्टी को ही जान लेता है। मिट्टी के एक लोंदे को जान लेने से यह सबकुछ मिट्टी से बने हुए को जान लेता है। इस प्रकार सनत्कुमार नारद से कहते हैं – तुमने केवल शब्दराशि जानी है। आत्मा को तुमने नहीं जाना है। उसी आत्मतत्त्व को जानो और फिर वे उपदेश करते हैं। कहते हैं, 'देखो! इस आत्मतत्त्व के ज्ञान को भूमा कहते हैं और अनात्मा के ज्ञान को अल्पज्ञान कहते हैं। भूमाज्ञान ही है **परमं ज्ञानमुत्तमम्**।' देवर्षि नारद ने कितना ज्ञान पाया था, पर आत्मतत्त्व का परम ज्ञान उन्होंने नहीं पाया था। **यत्र अन्यत् पश्यति अन्यत् शृणोति अन्यत् विजानाति तत् अल्पः**। देखो! अपने से बाहर जो देखना होता है, अपने से बाहर जो सुनना होता है, अपने से बाहर जो जानना होता है, वह अल्पज्ञान है। भूमाज्ञान क्या होता है? **यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् श्रृणोति नान्यत् विजानाति स भूमः** – यहाँ पर अपने से बाहर कुछ नहीं सुनता, अपने से बाहर कुछ नहीं देखता, अपने से बाहर कुछ नहीं जानता। **(क्रमशः)**

नवदुर्गा

दुर्गा-पूजा विशेष

स्वामी मैथिलीशरण

अध्यक्ष, रामकिंकर विचार मिशन, ऋषिकेश

नौ पूर्णांक है। साधक अपनी साधना एक से प्रारम्भ करता हुआ नौ को प्राप्त हो जाता है, पर यह ज्ञात रहे कि क्रमश: एक से नौ तक की जो यात्रा है, वह सूक्ष्मतम बिन्दु की ओर ले जाने के लिए है। नीचे उसका जो क्रम है, वह विस्तार और साधना का स्वरूप है। शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और नवमी देवी जो सिद्धिदात्री हैं, वस्तुत: ये सभी एक ही शक्ति के विभिन्न रूप हैं। जैसे एक कन्या पिता के यहाँ जन्म लेकर क्रमश: बढ़ते हुए अलग-अलग प्रकार की शिक्षा, योग्यता और आवश्यकताविशेष के अवसर पर अलग-अलग नामों और सम्बन्धों से जानी जाती है, उसी प्रकार से ये नौ दुर्गा साधकों की विभिन्न मन:स्थितियों और परिस्थितियों को पूर्ण करने के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में कृपापूर्वक भिन्न और विरोधी रूप धारण करके कार्य सिद्धि में सक्षम हैं। साधना से कृपा को प्राप्त करना ही नवरात्रि का चरम लक्ष्य है।

शक्ति रूप देवी का गौरवपूर्ण पूज्य पक्ष यह है कि वे एक ही शिव के प्रति निष्ठ हैं और शक्तिमान शिव ही उनके परमाराध्य हैं। शक्ति जब शिव-केन्द्रित होती है, तभी स्वयं भी पूर्णांक को प्राप्त होती है और साधक को भी व्यापक शिव में ही केन्द्रित करती है। शक्ति को पाने का मार्ग शिव हैं और शिव को प्राप्त करने का मार्ग शक्ति हैं। यही हमारी संस्कृति का पूरक और विराट स्वरूप है। रावण सहित अधिकांश असुर जो मारे गये, वे मात्र इसी अज्ञानता के कारण कि वे स्वयं शक्ति के स्वामी बनना चाहते थे। यह उसी प्रकार की घृणित और अधोगामी साधना है कि कोई अपनी ही माँ के गर्भ से जन्म लेकर, उसी से सारी योग्यताएँ प्राप्त कर, फिर उसी विधात्री का पुत्र न बनकर स्वयं उसका स्वामी बनने का प्रयास करे। साधना का पुरुषार्थ जब अपनी साधना के फल को प्रतिग्रहीता बनकर अपने परम साध्य के प्रति समर्पित कर देता है, तब उसको अपनी साधना का चरम फल प्राप्त होता है। नवदुर्गाओं में कोई विरोधी गुण ऐसा नहीं है, जिसे देवी ने न स्वीकारा हो। विरोधी गुणों का संसार के कल्याण के लिए उपयोग करना ही दुर्गा की पूर्णता है। वही उसका सिद्धिदात्री स्वरूप है।

शंकरजी स्वयं पार्वतीजी के सम्बोधन के लिए ऐसे दिव्य विशेषणों का प्रयोग करते हैं, जो परस्पर विरोधी गुणों से युक्त हैं, पर वे विशेषण शब्दार्थ के रूप में विरोधी होते हुए भी तत्त्व और भाव की दृष्टि से एक-दूसरे के पूरक हैं। गाय में वात्सल्य है, दूध है, तो उसके पास आत्मरक्षा के लिए सींग भी हैं। शरीर से मक्खी-मच्छर हटाने के लिए पूँछ भी है, यही जीवन-वाणी और योग्यता का पूरक तत्त्व है।

शंकरजी पार्वतीजी को एक ओर हे कमलानने! कमल के समान नेत्रोंवाली कहते हैं, भवप्रीता कहते हैं, भाव्या, (ईश्वर का भाव हृदय में धारण करने वाली), भव्या (सदा कल्याण भाव में स्थित रहनेवाली), अभव्या (तुमसे बढ़कर संसार में भव्यता और कहीं नहीं है) आदि कहकर सम्बोधित करते हैं, परन्तु साधक में उन्होंने अहंकारा भी कहा – मनो बुद्धिरहंकारा। अर्थात् तुम अहंता का आश्रय हो। शंकरजी कहते हैं कि तुममें ही अहंकार बसता है। यह पार्वतीजी की आलोचना नहीं है, अपितु भाव्या, भव्या, अभव्या आदि विशेषणों का पूरक भाव है। उनकी अहं व्यष्टि अहं नहीं है, अपितु वे समष्टि अहं का आश्रय हैं। वह यह कि मैं शिव हूँ और शिव मेरे हैं, शिव के अतिरिक्त न मेरा कोई भाव है और न मेरी कोई भव्यता है। वे शिव को ही अभव्य मानती हैं कि शिव के अतिरिक्त भव्यता और व्यापकता, विभुता और कहीं नहीं है। श्रीरामचरितमानस में शिव को ही समष्टि का अहंकार बताया गया है – अहंकार शिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान। स्पष्ट है कि शक्ति ही शक्तिमान का आश्रय है और शक्ति का आश्रय शक्तिमान है।

जिन १०८ विशेषणों से भगवान शंकर ने शक्तिस्वरूपा पार्वती को सम्बोधित किया, वे सारे विशेषण शिव में पहले से स्वयंसिद्ध और चरितार्थ हैं। शंकरजी पार्वतीजी की प्रशंसा करके उनसे अपनी एकरूपता सिद्ध कर रहे हैं, भिन्नता नहीं।

शेष भाग पृष्ठ ४२९ पर

तमिलनाडु का कन्याकुमारी शक्तिपीठ

दुर्गा-पूजा विशेष

सुदर्शन अवस्थी

पौराणिक आख्यान है, एक बार बाणासुर नामक असुर ने भगवान् शिवशंकर की कठिन तपस्या की और अमरत्व का वर माँगा। उसको वर देते समय शिव ने एक शर्त रखी थी कि तुम कुमारी कन्या के अतिरिक्त अन्य सबसे अजेय रहोगे। शिव का वर मिलने के बाद वह बहुत उपद्रव एवं उत्पात करने लगा। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। इससे सभी देवता भयभीत हो गये। तब उसके उत्पात से पीड़ित देवता भगवान् विष्णु की शरण में गये। विष्णु के कथनानुसार एक महायज्ञ का आयोजन किया गया। उस यज्ञ में हवन करने पर यज्ञकुण्ड की चिद् (ज्ञानमय) अग्नि से दुर्गाजी अपने एक अंश से कन्यारूप में प्रकट हुईं। बड़ी होने पर उस कन्या ने भगवान् शंकर को वररूप में पाने के लिये दक्षिण समुद्र के तट पर कठोर तपस्या की। उस कन्या के तप से भगवान् शिव बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसके साथ पाणिग्रहण स्वीकार किया। देवों को फिर चिन्ता सताने लगी कि यदि विवाह हो गया, तो बाणासुर का वध होना कठिन हो जायेगा। इस कार्य को रोकने का दायित्व ऋषियों ने नारद को सौंपा। नारद ने कन्याकुमारी से चार-पाँच कि.मी. दूर शुचीन्द्रम् नामक स्थान पर अनेक प्रपंचों में उलझाकर रातभर शिवजी को रोक रखा। विवाह का मुहूर्त टल गया और प्रात:काल हो गया। भगवान वहीं स्थाणुरूप में स्थित हो गये तथा देवताओं की युक्ति काम कर गयी।

ऐसा कहा जाता है कि अपना मनोरथ पूरा न होने के कारण देवी ने वहाँ पर पुन: तप करना प्रारम्भ कर दिया। अभी भी वे वहाँ कुमारी रूप में तप में संलग्न हैं। बाणासुर ने अपने दूतों से तपस्यारत देवी के अद्भुत सौन्दर्य की ख्याति सुनी, तो उससे विवाह के लिये हठ करने लगा। जब वह नहीं मानी, तो बाणासुर ने उससे युद्ध आरम्भ कर दिया। उस कुमारी का बाणासुर से भयंकर युद्ध हुआ। इसमें बाणासुर मारा गया। तब जाकर देवता उसके भय से मुक्त हो गये।

महाभारत के वनपर्व में कन्याकुमारी तीर्थ की महिमा बताते हुए कहा गया है –

ततस्तीरे समुद्रस्य कन्यातीर्थमुपस्पृशेत्।
तत्तोयं स्पृश्य राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

अर्थात् महर्षि पुलस्त्य जी भीष्म पितामह से कहते हैं – हे राजेन्द्र ! (कावेरी में स्नान करके) तत्पश्चात् समुद्र के तट पर विद्यमान कन्यातीर्थ (कन्याकुमारी) में जाकर स्नान करे। उस तीर्थ में स्नान करते ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।

श्रीमद्भागवत-महापुराण के अनुसार अगस्त्यजी से आशीर्वाद और अनुमति प्राप्त कर बलरामजी ने दक्षिण समुद्र की यात्रा की और वहाँ उन्होंने देवी दुर्गा का कन्याकुमारी के रूप में दर्शन किया –

दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः।।
(श्रीमद्भा १०/७९/१७)

कन्याकुमारी एक अन्तरीप (समुद्र में स्थित भूमि) है। यह हिन्द महासागर, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी का सम्मिलन-स्थल है। दक्षिण तट पर जहाँ तीनों समुद्र मिलते हैं, वहाँ का दृश्य देखने योग्य है, क्योंकि अरब सागर, बंगाल की खाड़ी एवं हिन्द महासागर देखने का आनन्द यहाँ ही मिलता है। ऐसा अन्यत्र कहीं भी भारत में अवसर प्राप्त नहीं होता। यहाँ पर बंगाल की खाड़ी के समुद्र में सावित्री, सरस्वती, गायत्री और कन्याविनायक इत्यादि तीर्थ हैं। कन्याकुमारी मन्दिर के दक्षिण में मातृतीर्थ, पितृतीर्थ और भीमातीर्थ हैं। पश्चिम में थोड़ी दूरी पर स्थाणुतीर्थ है। यह भी प्रसिद्ध है कि जो जल शुचीन्द्रम् में शिवलिंग पर चढ़ाया जाता है, वह वहाँ से रिस-रिसकर भीतर-ही-भीतर से पुन: समुद्र में कन्याकुमारी के मन्दिर के पास आकर के मिलता है।

कन्याकुमारी का मन्दिर समुद्र तट पर स्थित है। इसी स्थान पर राष्ट्रपति महात्मा गाँधी की अस्थियाँ भी प्रवाहित की गयी थीं और समाधि भी बना करके रखी गयी है। एक विशेष बात यह है कि दो अक्तूबर को सूर्य की पहली किरण का प्रकाश सर्वप्रथम गाँधीजी की समाधि पर ही पड़ता है। कन्याकुमारी देवी के दर्शनार्थ आनेवाले श्रद्धालु स्नानकर पहले गणेश-मन्दिर में गणेशजी के दर्शन के लिये जाते हैं। यह भी प्रथा है कि गणेशजी के दर्शन के पश्चात् पुरुष

केवल एक वस्त्र धोती पहनकर और महिलाएँ साड़ी पहन कर कन्याकुमारी के दर्शन करती हैं। अन्यथा पुजारी अन्दर जाने नहीं देते हैं। भीतर जाने के लिये कई द्वार हैं। उनको पार करके कन्याकुमारी देवी के दर्शन किये जा सकते हैं। देवी की प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर, प्रभावोत्पादक एवं भव्य है। देवी के हाथ में जपमाला दिखायी देती है। विशेष उत्सवों पर देवी का हीरों से श्रृंगार किया जाता है।

देवी की नाक के आभूषण में हीरा जड़ा हुआ है। उनके दर्शन का बहुत ही महत्त्व बताया जाता है। पहले जिस ओर से यह हीरा दिखायी देता था, रात्रि के समय उस ओर से आनेवाले जहाज चट्टान से टकरा कर चूर-चूर हो जाते थे। इसलिये उस ओर वाला द्वार अब बन्द रहता है। अधिक प्रकाश रात के समय होता है। इसलिये रात्रि के समय अवश्य दर्शन करने चाहिए। रात को वैसे भी विशेष श्रृंगार होता है। मन्दिर की उत्तरी दिशा में भद्रकाली का मन्दिर है। इनको देवी की सखी कहा जाता है। इस स्थान को सिद्धपीठ माना गया है, क्योंकि यहाँ सती का पृष्ठभाग गिरा था। यहाँ की देवी नारायणी और भैरव स्थाणु हैं। यहाँ और भी कई विग्रह हैं। थोड़ी दूरी पर 'पापविनाशनम्' पुष्करिणी है, यह सागरतट पर स्थित मीठे जल की बावली है। यात्री इसके जल से भी स्नान करते हैं। इसको मण्डूक-तीर्थ भी कहते हैं। यहाँ के तट पर काली, लाल एवं सफेद रेत मिलती है। इसको लोग अपने साथ स्मृति के रूप में ले जाते हैं। इन रेतों के दाने चावलों के समान लगते हैं। कहते हैं कि देवी कन्याकुमारी और भगवान् शिव के विवाह के लिए प्रस्तुत तिल, अक्षत और रोली ही विवाह न हो पाने की स्थिति में समुद्र में विसर्जित कर दिये गये थे, वे ही अब विभिन्न रंगों की रेत के रूप में स्थित हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ कौड़ियाँ, सीपियाँ और कई प्रकार के शंख मिलते हैं।

समुद्र के बीच में विवेकानन्द रॉक है। वहाँ विवेकानन्दजी का मन्दिर बनाया गया है। मोटरबोट पर बैठकर वहाँ जाया जा सकता है। उनके दर्शन करने के बाद वहाँ एक कमरे में ध्यान भी कर सकते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जब भारत की अत्यन्त दुखी अवस्था विवेकानन्दजी ने देखी, तो इस चट्टान पर तैर कर चले गये थे, जो सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। उन्होंने वहाँ तीन दिन तक ध्यान, चिन्तन किया था। इसी स्थान पर गौतम मुनि के शाप से इन्द्र को मुक्ति मिली थी। यहाँ पर ही आकर वे शुचि (पवित्र) हुए थे, इसलिये इसका नाम 'शुचीन्द्रम्' भी है। वैसे यह मन्दिर कुछ दूरी पर है। इसे नागराज मन्दिर भी कहा जाता है। इस स्थान की 'नागर कोविल' संज्ञा भी है। यहाँ पर एक बड़ा तालाब है। साथ ही शिव का मन्दिर एवं एक बहुत बड़ी हनुमानजी की खड़ी मूर्ति है। उसमें ऊपर जब पानी डालते हैं, तो नीचे अपने-आप आकर गिरता है। वहाँ के पुजारी अलग होते हैं। यहाँ भी एक वस्त्र ही पहनकर जाना पड़ता है। कन्याकुमारी में ही सन्त तिरुवल्लुवर की १३३ फीट ऊँची प्रतिमा है, जो भारत की सबसे ऊँची प्रतिमाओं में से एक है।

चैत्र-पूर्णिमा को सायंकाल यदि बादल न हों, तो इस स्थान से एक साथ बंगाल की खाड़ी में चन्द्रोदय तथा अरब सागर में सूर्यास्त का अद्‌भुत दृश्य दीख पड़ता है। उसके दूसरे दिन प्रात:काल बंगाल की खाड़ी में सूर्योदय तथा अरब सागर में चन्द्रास्त का दृश्य भी बहुत आकर्षक होता है। वैसे भी कन्याकुमारी में सूर्योदय तथा सूर्यास्त का दृश्य बहुत भव्य होता है। बादल न होने पर समुद्र-जल से ऊपर उठते या समुद्र-जल से पीछे जाते हुए सूर्य-बिम्ब का दर्शन बहुत आकर्षक लगता है। इस विहंगम दृश्य को देखने के लिये प्रतिदिन प्रात: सायं समुद्र-तट पर भारी भीड़ होती है। ○○○

(कल्याण, नवम्बर, २०२०, पृष्ठ ३४-३५ से साभार)

कविता

शोक हरी सुर दी वर दुर्गा

श्रीधर द्विवेदी, वाराणसी

वाहन सिंह दहाड़ रहा कर
गर्जन कोप उठी नव दुर्गा,
आयुध अष्ट भुजा धर के लल-
कार उठी अरि को वह दुर्गा ।
काल समान जले युग नैन,
भरी अति रोष महा वन दुर्गा ।
दाब हनी महिषासुर को सब
शोक हरी सुर दी वर दुर्गा ।

साधुओं के पावन प्रसंग (८०)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१९७९ ई. में स्वामी सत्प्रकाशानन्द जी का शरीर-त्याग होने पर स्वामी अशेषानन्द जी महाराज उनकी श्रद्धांजलि सभा में सेंट लुइस आये थे। तत्पश्चात् वे १९८४ ई. में ब्रह्मचारी थॉमस केल्विन को ब्रह्मचर्य-दीक्षा देने के लिए तथा १९८८ ई. में आश्रम के स्वर्ण जयन्ती समारोह में आये थे। इन अवसरों पर जब वे आश्रम में आये थे, तब मुझे उनकी सेवा करने का सुयोग मिला था। वे भोजन-मेज पर ठाकुर की सन्तानों के विषय में बातें करते थे। हमने उनके सभी व्याख्यानों का वीडियो-रिकॉर्डिंग किया था। पोर्टलैण्ड सेन्टर ने श्रीमाँ सारदा देवी की स्मृति में डी.वी.डी. बनाने हेतु उनमें से कुछ अंश का उपयोग किया है।

अशेषानन्दजी के जीवन-काल में उनके सत्संग के लिए मैं कई बार पोर्टलैण्ड सेन्टर गया था। ठाकुर मन्दिर में उनको पूजा करते हुए मैं प्राय: देखता था। उनकी पूजा यन्त्रवत् या औपचारिक नहीं थी। वे पूरे मन-प्राण से श्रीरामकृष्ण एवं श्रीमाँ की पूजा करते थे। भक्तगण फूल, फल-मिठाई तथा नैवेद्य सजाकर रखते थे तथा वे दोपहर १२ बजे के आसपास आकर पूजा आरम्भ करते थे। साधु तथा भक्तगण उनके पीछे बैठकर जप-ध्यान करते थे। उनका मन्त्रपाठ तथा पूजा देखने से ऐसा लगता कि वे जीवन्त देवता की पूजा कर रहे हैं। श्रीमाँ जैसे भक्तों को प्रसाद दिया करती थीं, पूजा के पश्चात् वे भी भक्तों के बीच प्रसाद-वितरण करते थे। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा था, ''तुम लिखना पसन्द करते हो और मुझे पूजा करना पसन्द है।''

जब कभी-भी हम सब संन्यासी भाई किसी उत्सव में एकत्रित होते थे, तब स्वामी अशेषानन्द जी स्वत:स्फूर्त ठाकुर के पार्षदों की बातें किया करते तथा हमारे मन को ऊपर उठा देते थे।

मैंने कभी भी उनके मुँह से किसी की परनिन्दा-परचर्चा नहीं सुनी। एक दिन बातों-बातों में मैंने एक व्यक्ति के बारे में कहा कि उसके भीतर अत्यधिक ईर्ष्या है। मैंने कहा कि ''महाराज, उसको गात्रदाह है अर्थात् उसका शरीर ईर्ष्या से जल रहा है।'' उन्होंने सहज में मेरी बातों को सुधारते हुए कहा, ''यह गात्रदाह नहीं, मनदाह (मन जल रहा) है।'' बस! वही पर बात समाप्त हो गई। अपने गुरु के आदेश 'किसी का दोष मत देखना' का अशेषानन्दजी पालन करते थे।'

अशेषानन्द जी महाराज को दो भूमिकाओं में देखा हूँ एक स्नेहमयी माता और दूसरा दण्डदाता पिता। यदि महाराज भक्तों में कोई त्रुटि देखते, तो वे भक्तों को कठोर शब्दों में डाँटते-फटकारते थे। भक्तगण उनकी इस डाँट-फटकार को महाराज का आशीर्वाद मानते थे। वे लोग यह जानते थे कि यह डाँट महाराज के मुँह से निकल रही है, उनके हृदय से नहीं। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता था कि महाराज उनके अहंकार को नष्ट करने के लिए डाँटते थे, जिससे वे लोग विनयी हो सकें। महाराज सदैव भक्तों की मंगल-कामना किया करते थे एवं उनलोगों को निपुण बनाने का प्रयास करते थे। हिन्दू शास्त्र कहते हैं कि 'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्य:' अर्थात् देवताओं का क्रोध भी वरदान के समान है।

एक दिन स्टॉर्ट ब्रूस सांसारिक विषयों की चर्चा कर रहे थे। अशेषानन्दजी ने उच्च स्वर में कहा, ''मिस्टर ब्रूस, वे सब बातें यहाँ पर मत करो। केवल ईश्वर की बातें करो।'' मिस्टर ब्रूस ने अविलम्ब कहा, ''स्वामीजी, आपने ठीक कहाँ।'' पोर्टलैण्ड के भक्तगण महाराज की डाँट को अच्छी मनोभावना से स्वीकार करते थे। वास्तव में यदि महाराज उनलोगों को कुछ दिन नहीं डाँटते थे, तो वे लोग चिन्तित हो जाते थे कि शायद महाराज अन्तर्मुख हो रहे हैं तथा वे जल्द ही हमें छोड़कर इस संसार से चले जायेंगे। एक दिन एक ब्रह्मचारी ने महाराज से कहा, ''स्वामी, मेरी एक समस्या है?''

अशेषानन्दजी ने कहा, ''समस्या ! श्रीमाँ से प्रार्थना

करो।''

एक अन्य दिन उस ब्रह्मचारी ने कहा, ''स्वामी, मैं अवसाद में हूँ।''

''अवसाद, उसके अभ्यस्त हो जाओ।'' स्वामी ने अविलम्ब उत्तर दिया।

मैंने महाराज के आदेशात्मक आवाज के विषय में एक घटना सुनी थी। एक दिन जब महाराज सभा-भवन में व्याख्यान दे रहे थे, तभी एक आगन्तुक आया। व्याख्यान के समय किसी का सभा में प्रवेश करना महाराज पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने उच्च स्वर में कहा, ''बैठ जाओ।'' वह व्यक्ति अविलम्ब पीछे की कुर्सी पर बैठ गया। व्याख्यान के पश्चात् सभी लोग चले गये, परन्तु वह व्यक्ति अभी भी वहाँ पर बैठा हुआ था। महाराज ने उससे पूछा, ''तुम कौन हो?'' आगन्तुक ने उत्तर दिया, ''मैं यूपीएस डिलिवरी मैन हूँ।''

एक दिन उत्सुकतावश मैंने महाराज से पूछा कि आप रविवार का व्याख्यान कैसे तैयार करते हैं। उन्होंने कहा, ''रविवार की सुबह मैं कुछ उपनिषद्, गीता, ठाकुर तथा स्वामीजी की पुस्तकें पढ़ता हूँ तथा उससे विचार लेकर व्याख्यान देता हूँ।'' व्याख्यान के पूर्व मिस्टर बूस पन्द्रह से बीस मिनट किसी शास्त्र से पाठ करते थे। महाराज के सभा-भवन में प्रविष्ट होने पर वे पाठ बन्द कर देते थे। महाराज जब वक्तृता देते, तब उनको समय का बोध नहीं रहता था तथा वे कब समाप्त करेंगे, कोई नहीं जानता था। हमने उनके व्याख्यान के भाव को लक्ष्य किया था, वे प्लेटो तथा अरस्तू के विचार से आरम्भ करते, तत्पश्चात् सन्त थॉमस एक्विनास या मीस्टर एकहार्ट तथा हाइजेनवर्ग या आइंस्टीन के उद्धरण देते थे। महाराज ठाकुर, श्रीमाँ तथा ठाकुर के शिष्यों के विषय में बातें करते हुए व्याख्यान को विराम देते थे। अशेषानन्दजी अपने प्रत्येक व्याख्यान में त्याग-वैराग्य, समाधि तथा जीवन्मुक्ति का उल्लेख अवश्य ही करते थे। वृद्ध अवस्था में भी उनकी आवाज गम्भीर थी। व्याख्यान के बीच में वे महान शक्ति तथा अधिकार और कभी-कभी विनोद के शब्दों में बोला करते थे। उनका स्वयं का आविष्कृत कुछ अविस्मरणीय वाक्य था, जैसे – God vision and television never go together (अर्थात् ईश्वर-दर्शन तथा दूरदर्शन दोनों साथ-साथ नहीं हो सकता।''

जब तक अशेषानन्दजी स्वस्थ थे, तब तक विमानतल पर संन्यासियों को लेने के लिए स्वयं जाते थे। उनकी निरभिमानिता तथा साधु-भाइयों के प्रति स्नेह अपार था।

मैं १८ जुलाई, १९९६ को पोर्टलैण्ड में अशेषानन्दजी का अन्तिम दर्शन करने गया। यद्यपि उस समय वे शय्याशायी थे तथा नाक से उनको तरल पदार्थ दिया जा रहा था, तथापि वे बहुत सजग थे तथा उनकी स्मृति यथावत् थी। उनको मालूम था कि मैं उनके दर्शन के लिए आ रहा हूँ। उन्होंने स्वामी शान्तरूपानन्द से कहा, ''चेतनानन्द मुझे देखने के लिए आ रहा है। कृपया एक कुर्सी मेरे बिस्तर के पास रखना तथा जैसी कि हमारी परम्परा है, उसको उपहार के रूप में कुछ देना।'' महाराज के निर्देशानुसार शान्तरूपानन्द ने सब व्यवस्था की। अशेषानन्दजी ने मेरे ऊपर अशेष दया करके कई मिनट तक वार्तालाप किया। शान्तरूपानन्द ने मुझे ३५ डॉलर का एक चेक दिया। उस उपहार-चेक को लेकर मैं शान्तरूपानन्द के साथ जे.सी.पेनी की दुकान में गया तथा एक चैनल ५ परफ्यूम खरीदा। आश्रम वापस आकर देखा कि महाराज बिस्तर पर सोये हुए हैं। मैंने उनके बिछौने के चारों ओर उस परफ्यूम का छिड़काव किया तथा उस बोतल को मिस्टर बूस को देते हुए कहा कि समय-समय पर उस परफ्यूम को महाराज के बिस्तर पर छिड़क दिया कीजिएगा। उसके अगले दिन महाराज से विदाई लेने के लिए गया तथा उनसे आशीर्वाद के लिए याचना की। उन्होंने शक्ति लगाते हुए जोर से कहा, 'अपने हृदय से'। 'अपने हृदय से' महाराज की वाणी अभी भी मेरे कानों में गूँज रही हैं।

१६ अक्तूबर, १९९६ ई. को ९७ वर्ष की आयु में स्वामी अशेषानन्द जी महाराज ने अपना पंचभौतिक शरीर त्याग दिया। २४ नवम्बर को पोर्टलैण्ड में उनकी श्रद्धाँजलि सभा की गयी थी। अमेरिका के लगभग सभी केन्द्रों के संन्यासी उस सभा में उनके प्रति अपनी श्रद्धा ज्ञापित करने के लिए समवेत हुए थे।

स्वामी अशेषानन्द जी महाराज रामकृष्ण संघ के एक आदर्श संन्यासी थे। मैंने उनके जैसा संन्यासी बहुत कम देखा है। उन्होंने स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज का संग किया था। तुरीयानन्दजी महाराज कहा करते थे, ''**जीवन्मुक्ति-सुखप्राप्ति हेतवे जन्मधारितम्। आत्मना नित्यमुक्तेन न तु संसारकाम्यया।।** अर्थात् वह नित्यमुक्त आत्मा किसी सांसारिक कामना से नहीं अपितु जीवन्मुक्ति के सुख का आस्वादन करने के लिए ही

जन्म लेती है? इस श्लोक ने हरि महाराज के जीवन के लक्ष्य को स्पष्ट कर दिया था। अशेषानन्दजी भी अपने व्याख्यान तथा संवाद के बीच में जीवन्मुक्ति के इस श्लोक तथा तीव्र वैराग्य की बातें कहा करते थे। उनको देखने से ऐसा लगता कि उन पर किसी देवता का आवेश है, पर किस देवता का है, यह मैं नहीं जानता, मेरे मन में स्फुरित होता शायद ठाकुर और श्रीमाँ का। वे वास्तव में एक रहस्यवादी साधु थे तथा वेदान्त सेन्टर, पोर्टलैण्ड के एक छोटे-से आश्रम में अपने को छुपा कर रखा था। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४०६ का शेष भाग

के इस महान मूल्य को नहीं समझा है। जिनकी भोग की प्रवृत्ति है, निम्न इच्छाएँ हैं, वे भोगवादी उन प्रवृत्तियों में लगे रहते हैं। वे सब प्रकार की अनीति, दुर्गति से भोग-वस्तुओं का संग्रह कर उन विषयों का भोग करते हैं। इसका परिणाम विनाश होता है।

प्रकृति ने घोड़ा, गधा, बैल, कुत्ता, शेर विभिन्न प्रकार के पशु बनाये हैं। बैल घोड़े जैसा और घोड़ा शेर जैसा नहीं दौड़ सकता, वह मर जायेगा। उसकी उस शक्ति का उपयोग नहीं हो सकेगा, जिसके लिए वह हुआ है। घोड़ा घानी नहीं पेर सकता, किन्तु रण में युद्ध कर सकता है। गधा पहाड़ पर बोझा ढो सकता है। सैकड़ों बाँध बनते हैं, उसमें गधे का उपयोग करके हिमालय में बहुत काम लेते हैं। उस जगह अगर आप दूसरे जानवर को लगा दें, हरियाणा के स्वस्थ बैल को लगा दें, तो थोड़े दिन में वह मर जायेगा। उसके लिये वह बना नहीं है।

ठीक उसी प्रकार मनुष्य की योनि भोग के लिये नहीं है। इसलिए यदि मनुष्य भोगी हुआ, तो बहुत शीघ्र उसके शरीर, मन और उसकी बुद्धि का नाश हो जायेगा। उसकी मृत्यु भले न हो, पर टूट जाता है और टूटने के कारण वह किसी काम का नहीं रह जाता। मनुष्यत्व का विकास हुआ नहीं है, पशुत्व इससे सम्भव नहीं है। इसलिए यौवन का उद्दाम ज्यों ही समाप्त होता है, तो महान पश्चात्ताप होने लगता है।

मनुष्य का जीवन इतना महान है। इतने पुण्यों से मिलता है। भगवान आदि शंकराचार्य 'विवेक चुडामणि' में लिखते हैं – **'दुर्लभं त्रयमेवैतद् दैवानुग्रहहेतुकं। मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः।'** हे मनुष्यो, सुनो, संसार में ये तीन चीजें बड़ी दुर्लभ हैं – मनुष्य-जन्म, मुमुक्षा और महापुरुष का सान्निध्य। आप हृदय के किसी कोने में अनुभव करते हैं कि सांसारिक भोग से भी श्रेष्ठ कुछ है। इस श्रेष्ठ को पाने की इच्छा का नाम मुमुक्षुत्व है। ऐसी इच्छा मन में हुई, इसलिये आप शिविर में आये हैं।

एक दिन या तीन दिन के आध्यात्मिक शिविर में क्यों जाते हैं? इसलिए कि आज दिन-भर में आप अपनी चर्या इस प्रकार बनायें, अपने विचार इस प्रकार बनायें कि यहाँ से लौटकर दैनन्दिन जीवन में प्रतिदिन उसका उपयोग कर सकें, उसको काम में ला सकें, जिससे आपके जीवन में परितर्वन आये, चेतना में परिवर्तन आये। जीवन में परिवर्तन की प्रक्रिया का अभ्यास कराने के लिए आप साधना शिविर में आते हैं। ○○○

पृष्ठ ४२४ का शेष भाग

नारी की शक्ति, नारी का ऐश्वर्य, नारी का सुयश, नारी का सम्मान किसी एक अधिष्ठान में केन्द्रित हुए बिना असुरों या असुर वृत्ति के अधीन हो सकता है। क्योंकि द्वितीय में अद्वितीय भाव लाये बिना अद्वितीय की सिद्धि ही नहीं होगी।

शक्ति पुरुषार्थ-साध्य न होकर कृपा-साध्य है। नारी भी कृपा-साध्य है। उसे पुरुषार्थ से प्राप्त करने की बात करनी आसुरी वृत्ति है। नारी-शक्ति को कृपा से प्राप्त करना शिव दृष्टि है, जो अनन्त, अनादि और सर्वत्र व्याप्त व्यापकता है। नारी का स्वातन्त्र्य तभी सिद्ध और महिमामण्डित होगा, जब वह शिव को अर्पित होगी अर्थात् अद्वितीय की परतन्त्रता को शिरोधार्य कर लेगी। नारी-शक्ति को किसी से दान पाने या किसी के अनुग्रह की अपेक्षा नहीं है, नारी-शक्ति स्वयं सिद्ध है, क्योंकि वह शिव की शक्ति है। शिव स्वयं सिद्ध हैं, क्योंकि उनके जीवन में पार्वती का कोई विकल्प नहीं है। ○○○

रामकृष्ण मिशन का स्थापना-महोत्सव बेलूड़ मठ में आयोजित हुआ

१ मई, २०२५ को रामकृष्ण मिशन का स्थापना-दिवस समारोह बेलूड़ मठ में आयोजित हुआ। इस उपलक्ष्य में आयोजित सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण संघ के परमाध्यक्ष परम पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने की। रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव श्रीमत् स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज और कुछ अन्य लोगों ने भी व्याख्यान दिये। इस कार्यक्रम में सन्त और भक्त मिलकर कुल लगभग १५०० लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में दन्त विभाग का उद्‌घाटन

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में दन्त विभाग का विस्तार किया गया। उसमें विशेष डेन्टल चेयर और अन्य विशेष दन्त-चिकित्सा-सम्बन्धी उपकरणों में वृद्धि की गयी। इसका उद्‌घाटन आश्रम के सचिव श्रीमत् स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज ने अन्य संन्यासियों की उपस्थिति और दन्त-विशेषज्ञ डॉ. काजल सिंह की उपस्थित में किया। अब दन्त-सम्बन्धी किसी भी रोग की चिकित्सा, जैसे दाँत की स्केलींग, दाँत लगाना, नया दन्त स्ट्रक्चर, रुट कैनाल आदि यहाँ की जायेगी।

कोलयानगर, धनबाद में प्रार्थना मन्दिर का उद्‌घाटन हुआ

५ जुलाई, २०२३ को १०.३० बजे **रामकृष्ण विवेकानन्द स्वध्याय सेवा ट्रस्ट**, कोयलानगर, धनबाद के प्रार्थना कक्ष और भवन का दिव्य भव्य उद्‌घाटन रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज के कर-कमलों से सुसम्पन्न हुआ। प्रातः ७ बजे संन्यासियों, भक्तों और बी.सी.सी.एल के अधिकारी द्वारा प्रभात फेरी निकाली गयी। संन्यासियों ने विशेष पूजा-हवन किया। १२ बजे पूज्य उपाध्यक्ष महाराज जी का आशीर्वचन हुआ, उनके साथ मंचस्थ थे स्वामी अमृतरूपानन्द, स्वामी नटराजानन्द, स्वामी आत्मश्रद्धानन्द, श्री मुरली कृष्ण रमैया और श्री आर. के. सहाय। आश्रम के सचिव श्री बिकेश कुमार सिंह ने सभी अतिथियों का स्वागत किया और आश्रम के उद्देश्यों और कार्यों पर प्रकाश डाला। उसके बाद १२०० अतिथियों का भोजन और साधु-भंडारा हुआ। शाम ६.३० बजे सन्ध्या आरती हुई। ७.१५ बजे की सार्वजनिक सभा में स्वामी आत्मश्रद्धानन्द, स्वामी रामतत्त्वानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने व्याख्यान दिया। बच्चों और भक्तों ने संगीत प्रस्तुत किये। रात में लगभग ३०० लोगों ने भोजन किया। मंच संचालन स्वामी तन्महिमानन्द जी ने की। समारोह की सुव्यवस्था संचालन स्वामी भवेशानन्द जी के नेतृत्व में श्री दिलीप सिंह जी, आनन्द बत्ता, उत्कर्ष चौबे आदि ने की। इसमें रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों के लगभग २५ संन्यासी और १५०० भक्तों ने भाग लेकर समारोह को आनन्दमय बना दिया। विदित हो, इस आश्रम की स्थापना बी.सी.सी.एल के सी.एम.डी. श्री समीरन दत्ता के विशेष सहयोग और सभी अधिकारियों के हार्दिक सहयोग से हुई है। सभी कार्यक्रमों एवं व्यवस्था में बी.सी.सी.एल कम्पनी के सचिव श्री बानी कुमार पारूई जी अपने सहयोगियों के साथ सदा उपस्थित रहे।